।। श्री वीतरागाय नमः।।

श्रावक-प्रतिक्रमण सूत्र

(विधि सहित)

स्थानक में म.सा. विराजमान हों तो उन्हें तिक्खुतो के पाठ से 3 बार वंदना करें। यदि म.सा. विराजमान न हों तो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुंह करके 3 बार वंदना करें। आचार्य भगवन् (अपने-अपने धर्माचार्य जी का नाम लेना) की अनुज्ञा लेकर चउवीसत्थय■ करें। यथा-आचार्य प्रवर पूज्य 1008 श्री रामलाल जी म.सा. की अनुज्ञा से दैवसिक प्रतिक्रमण एवं चउवीसत्थय करता हूँ/करते हैं। चउवीसत्थय में नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी का पाठ कहकर कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग में दो लोगस्स मन में कहें तथा 'णमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पारें। फिर नवकार मंत्र और कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ (कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्याया हो, मन, वचन, काया के योग चलित हुए हों तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं) कहें और एक लोगस्स प्रगट बोलें। आसन छोड़कर बायां घुटना खड़ा करके दो णमोत्थु णं बोलें। दूसरे णमोत्थु णं में संपत्ताणं के स्थान पर 'संपाविउकामाणं' कहें। दो णमोत्थु णं के बाद ''धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ'' कहें❋-**'णमोत्थु णं रामस्स गणिवरस्स❖ मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स'** और फिर खड़े होकर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके इच्छामि णं भंते का पाठ बोलें।

■ श्री उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन एवं अनुयोगद्वार सूत्र के अनुसार चउवीसत्थव न होकर चउवीसत्थय है।

❋ श्री राजप्रश्नीय आदि अनेक आगमों में क्वचित् सिद्धों व अरिहंतों के पश्चात्, अपने धर्माचार्य को नमस्कार करने का उल्लेख प्राप्त होता है। दो णमोत्थु णं के पश्चात् श्रावक-श्राविकाओं के द्वारा भी अपने धर्माचार्य की स्तुति करना आगमिक विधि है। अत: सर्वत्र दो णमोत्थु णं के पश्चात् ''धर्मगुरु धर्माचार्य का स्तुति पाठ'' उच्चारणीय होने के कारण इस पाठ का संयोजन किया गया है।

❖ यहाँ पर अपने-अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का नाम लिया जा सकता है।

1. इच्छामि णं भंते का पाठ

(प्रतिक्रमण-अनुज्ञा-सूत्र)

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं✷ पडिक्कमणं ठाएमि, देवसिय❖-णाण-दंसण-चरित्ताचरित्त-तव अइयार-चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

विधि- तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके 'प्रथम सामायिक आवश्यक की अनुज्ञा है' ऐसा कहकर खड़े-खड़े नवकार मंत्र, करेमि भंते का पाठ बोलकर, इच्छामि ठाइउं का पाठ बोलें।

2. इच्छामि ठाइउं का पाठ

(आत्म-विशुद्धि-सूत्र)

इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं जो मे देवसिओ✦ अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो, अणिच्छिअव्वो, असावगपाउग्गो, नाणे❁ दंसणे, चरित्ताचरित्ते, सुए, सामाइए❃, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्हं सिक्खाव्वयाणं, बारसविहस्स सावगधम्मस्स, जं खंडियं, जं विराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

✷ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइयं', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियं', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासियं', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियं' शब्द बोलना चाहिये।

❖ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइय', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिय', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिय', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिय' शब्द बोलना चाहिये।

✦ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइओ', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खिओ', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउम्मासिओ', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरिओ' शब्द बोलना चाहिये।

❁ हारिभद्रीयावश्यकवृत्ति, आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकावचूरि में 'तह' शब्द का उल्लेख नहीं है। अत: शुद्ध मूल पाठ का अनुसरण करते हुए 'तह' शब्द इस पाठ में नहीं रखा गया है।

❃ श्री स्थानांग सूत्र स्थान 3 उद्देशक 1 में तीन गुप्ति संयत मनुष्यों की ही बताई है। अत: तीन गुप्ति संबंधी प्रतिक्रमण श्रावकों के लिए अकर्तव्य होने से 'तिण्हं गुत्तीणं' पाठ नहीं रखा गया है। सम्मेलन में विभिन्न संप्रदायों की पारस्परिक चर्चाओं के निष्कर्ष में भी 'तिण्हं गुत्तीणं' पाठ नहीं रखना, ऐसा उल्लेख है।

विधि- तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर 99 अतिचार (आगमे तिविहे से छोटी संलेखना तक के सभी पाठ) और 18 पापस्थान का पाठ कायोत्सर्ग❀ में बोलें। पाठों में जहाँ-जहाँ 'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' आए वहाँ-वहाँ कायोत्सर्ग में 'तस्स आलोउं' बोलना चाहिए।

3. आगमे तिविहे सूत्र

(ज्ञान के अतिचारों का पाठ)

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे इस तरह तीन प्रकार आगमरूप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तं जहा जं वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, ❖घोसहीणं, जोगहीणं, सुट्ठुदिण्णं दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, ❖असज्झाइए सज्झाइयं, ❖सज्झाइए न सज्झाइयं पढ़ते-पढ़ाते विचारते ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो जो मे देवसिओ✸ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

❀ इस संशोधन से पूर्व श्रावक प्रतिक्रमण में 'इच्छामि ठाइउं' का पाठ कुल 6 बार तथा 18 पापस्थान का पाठ कुल 4 बार मननीय, उच्चारणीय था। सम्मेलन में विभिन्न संप्रदायों की पारस्परिक चर्चाओं के निष्कर्ष में 'इच्छामि ठाइउं' का पाठ प्रतिक्रमण में तीन बार से अधिक नहीं रखना, ऐसा उल्लेख है। इस दृष्टि से इच्छामि ठाइउं के पाठ को जहाँ-जहाँ नहीं रखा गया है, वे स्थान हैं-1. कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों के बाद, 2. प्रकट रूप से बोलते समय 99 अतिचारों के बाद एवं 3. बड़ी संलेखना के बाद। 18 पापस्थान के पाठ को बड़ी संलेखना के बाद नहीं रखा गया है। इन पाठों में से इच्छामि ठाइउं के पाठ को जहाँ-जहाँ रखा गया है, वे स्थान हैं-1. पहले आवश्यक में कायोत्सर्ग से पहले, 2. श्रावक सूत्र में एवं 3. पाँचवें आवश्यक में कायोत्सर्ग से पहले। 18 पापस्थान को जहाँ-जहाँ रखा गया है, वे स्थान हैं-1. कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों के बाद, 2. प्रकट रूप से बोलते समय 99 अतिचारों के बाद एवं 3. खामेमि सव्व जीवे के बाद।

❖ आवश्यक चूर्णि, हारिभद्रीय-आवश्यकवृत्ति आदि अनेक प्राचीन ग्रंथों में 'जोगहीणं, घोसहीणं' यह क्रम न होकर 'घोसहीणं, जोगहीणं' यह क्रम है एवं इन्हीं ग्रंथों में 'असज्झाए' के स्थान पर 'असज्झाइए' और 'सज्झाए' के स्थान पर 'सज्झाइए' पाठ है। अत: शुद्ध क्रम एवं पाठ के अनुसार यहाँ संशोधन किया गया है।

✸ यहाँ और आगे भी जहाँ-जहाँ 'देवसिओ' शब्द है, वहाँ-वहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइओ' आदि पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

4. दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

(सम्यक्त्व की शुद्धि का पाठ)

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं❖ सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥१॥
परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावण्णकुदंसणवज्जणा, य सम्मत्तसद्दहणा ॥२॥

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो। इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1 जिनवचन में शंका की हो, 2 परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3 धर्म के फल में संदेह किया हो, 4 परपाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5 परपाखण्डी का परिचय किया हो। मेरे सम्यक्त्वरूप रत्न पर मिथ्यात्वरूपी रज-मैल लगा हो तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

5. बारह व्रतों के अतिचार

पहला स्थूल-प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा❀- 1. रोषवश गाढा बंधन बांधा हो, 2. गाढ़ा घाव घाला हो, 3. अवयव (चमड़ी आदि) का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. आहार (भात-पानी) का विच्छेद किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई

❖ आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों में 'जावज्जीवाए' के स्थान पर 'जावज्जीवं' शब्द है, जावज्जीवाए शब्द रखने से छंदोभंग होता है।

❀ प्रतिक्रमण के पाठों के आरंभ में 'आलोउं' शब्द का कोई प्रयोजन नहीं है। पाठ के अंत में यथास्थान तस्स आलोउं (प्रथम आवश्यक में कायोत्सर्ग में 99 अतिचारों का चिंतन करते समय) और तस्स मिच्छा मि दुक्कडं दिया जाता है। कायोत्सर्ग में 'तस्स आलोउं' द्वारा दोषों की आलोचना करने एवं चतुर्थ आवश्यक में दोषों का तस्स मिच्छा मि दुक्कडं देते हुए प्रतिक्रमण पाठों के आरंभ में 'आलोउं' बोलने का कोई प्रयोजन नहीं है। एतदर्थ, आगमे तिविहे, 12 व्रतों के अतिचार और 18 पापस्थानों के पाठ आदि के आरंभ में आने वाले 'आलोउं' शब्द को निष्प्रयोजनता के कारण हटाया गया है।

अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी✷ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दूजा स्थूल-मृषावाद-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. सहसाकार❖ से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2. एकान्त में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री❋ के मर्म (गुप्त बात) प्रकाशित किये हों●, 4. मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो, 5. झूठा लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा स्थूल-अदत्तादान-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा- 1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्यविरुद्ध काम किया हो, 4. कूड़ा तोल, कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल-सम्भेल की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

चौथा स्वदार संतोष❁ परदार विवर्जनरूप स्थूल-मैथुन विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. इत्तरियपरिग्गहिया❖ से गमन किया हो, 2. अपरिग्गहिया से गमन किया हो, 3. अनंगक्रीड़ा की हो, 4. पराये का विवाह कराया हो, 5. कामभोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाँचवां स्थूल-परिग्रह-विरमण (परिग्रहपरिमाण) व्रत के विषय में

✷ प्रतिदिन दिवस प्रतिक्रमण में दिवस संबंधी, रात्रि के प्रतिक्रमण में रात्रि संबंधी पाक्षिक प्रतिक्रमण में पक्खी संबंधी, चौमासी प्रतिक्रमण में चौमासी संबंधी और संवत्सरी प्रतिक्रमण में संवत्सरी संबंधी बोलना चाहिये।

❖ सोचे समझे बिना की गई कोई भी प्रवृत्ति।

❋ स्त्री को 'अपने पुरुष' कहना चाहिये।

● मूल पाठ में 'सदारमंतभेए' पाठ के अनुसार यहाँ अपनी स्त्री के मर्म प्रकाशित किये हों, ऐसा अर्थ किया है। उपलक्षण से किसी भी व्यक्ति के मर्म प्रकाशित करना अतिचार है, ऐसा समझा जा सकता है।

❁ स्त्री को 'स्वपतिसंतोष पर-पुरुष-विवर्जन रूप' बोलना चाहिये।

❖ अपरिग्गहिया-अपरिगृहीता के साथ गमन किया हो, ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये। स्त्री को इत्तरिपरिग्गहिय इत्वरपरिगृहीत (थोड़े काल के लिये पतिरूप से स्वीकार किया) और अपरिग्गहिय-अपरिगृहीत (पतिरूप से स्वीकार नहीं किए हुए जार वगैरह) पुरुष से गमन किया हो, ऐसा बोलना चाहिये।

जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. खेत्त❁-वत्थु❋ का परिमाण अतिक्रमण (उल्लंघन) किया हो, 2. हिरण्य-सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद-चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 5. कुप्य (कांसी, पीतल, तांबा, लोहा आदि धातु का तथा इनसे बने हुए बर्तन आदि और शय्या, आसन, वस्त्र आदि घर सम्बन्धी वस्तुओं) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

छठे दिशाव्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. ऊंची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से पथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो तो इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवां उपभोगपरिभोग-परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुष्पक्व का आहार किया हो, 5. तुच्छौषधि❖ का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

चौथे स्थूल की टिप्पणी : जिन श्रावकों ने जीवन पर्यन्त सम्पूर्ण मैथुन का परित्याग कर दिया है, उनका चौथा व्रत 'स्वदारसंतोष परदार विवर्जन' न होकर 'सर्व मैथुन विरमण' रूप होता है किन्तु पाठ में परिवर्तन करना शक्य नहीं है क्योंकि 'सर्व मैथुन विरमण' की प्रतिज्ञा वाले श्रावक को 'स्वस्त्रीगमन' सम्बन्धी अतिचार का प्रतिक्रमण भी करना होगा। 'स्वस्त्रीगमन' को पाँच अतिचारों में नहीं लिया गया है अत: उसके लिए अतिचार पाठ में भी भिन्नता आएगी। यद्यपि प्रतिक्रमण सूत्र में अगार धर्म के व्रतों एवं अतिचारों सम्बन्धी समुच्चय पाठ गृहीत है। तथापि प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिज्ञाओं में होने वाली न्यूनाधिकताओं का समावेश प्रतिक्रमण सूत्र में संभव नहीं है।

❁ खुली जमीन।

❋ निर्मित मकान, दुकान आदि।

❖ जिसमें खाने योग्य अंश तो थोड़ा हो और अधिक फेंकना पड़े, उसे तुच्छौषधि कहते हैं, जैसे-मूंग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना (गंडेरी) आदि।

पन्द्रह कर्मादान❁ सम्बन्धी जो कोई अतिचार लगा हो, तं जहा-1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दन्तवाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्ये, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निलंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. ❋सर-दह-तलाय परि-सोसणया, 15. ❖असई-पोसणया इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

आठवें अनर्थदंड-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2. भंड-कुचेष्टा की हो, 3. मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण यानि हिंसाकारी उपकरणों का संग्रह किया हो, 5. उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

नवें सामायिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1-3. मन, वचन और काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हों, 4. सामायिक की स्मृति न रखी हो, 5. समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दसवें देशावकाशिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा- 1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3. शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हों, 5. कंकर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ग्यारहवें प्रतिपूर्ण-पौषध व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. पौषध में शय्यासंथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2.

❁ अधिक हिंसा वाले धन्धों से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन धन्धों से उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का बन्ध होता है उन्हें कर्मादान कहते हैं। ये श्रावक के जानने योग्य हैं किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं।

❋ श्री भगवती सूत्र, हारिभद्रीयावश्यक-वृत्ति, हस्तलिखित आवश्यकावचूरि में 'परिसोसणया' पाठ है।

❖ श्री भगवती सूत्र आदि उपर्युक्त ग्रंथों एवं आवश्यक निर्युक्ति, दीपिका, आवश्यकचूर्णि में असईजण पोषणया पाठ न होकर असई-पोषणया पाठ है।

प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चारपासवण की भूमि को देखी न हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूंजी न हो या अच्छी तरह से न पूंजी हो, 5. उपवासयुक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तं जहा-1. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2. अचित्त वस्तु सचित्त से ढांकी हो, 3. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, 4. दान नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु दूसरे की कही हो, 5. ईर्ष्या भाव से दान दिया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

6. संलेखना के पाँच अतिचारों का पाठ

अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा- इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

7. अठारह पापस्थान का पाठ

अठारह पापस्थान- 1. प्राणातिपात, 2. मृषावाद, 3. अदत्तादान, 4. मैथुन, 5. परिग्रह, 6. क्रोध, 7. मान, 8. माया, 9. लोभ, 10. राग, 11. द्वेष, 12. कलह, 13. अभ्याख्यान, 14. पैशुन्य, 15. परपरिवाद, 16. रति-अरति, 17. माया-मृषावाद, 18. मिथ्यादर्शनशल्य-इन अठारह पापस्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

विधि- कायोत्सर्ग पूरा होने पर 'णमो अरिहंताणं' बोलकर कायोत्सर्ग खोलें फिर नवकार मंत्र व कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ बोलें। फिर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके 'दूसरे चउवीसत्थय आवश्यक की अनुज्ञा

है' ऐसा कहकर खड़े होकर लोगस्स बोलें। फिर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदना करके 'तीसरे वन्दना आवश्यक की अनुज्ञा है' ऐसा कहकर दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलें।

8. इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि अहोकायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो[1] जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमि खमासमणो! देवसिअं वइक्कमं[2] आवस्सियाए पडिक्कमामि। खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए[3] तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालिआए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो[4] कओ, तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

विधि- खड़े होकर तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से विधिपूर्वक वंदना करके ''चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक की अनुज्ञा है'' ऐसा बोलकर खड़े होकर ध्यान में कहे हुए सभी पाठ प्रगट बोलना।

इसके बाद पाठ नं. 9 **''समुच्चय पाठ''** तथा पाठ नं. 10 **''तस्स सव्वस्स''** का पाठ बोलें।

नोट - रात्रिक प्रतिक्रमण में- ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''राई वइक्कंता[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''राइयं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''राइयाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''राइओ अइयारो[4]''। **पाक्षिक प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''पक्खो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''पक्खियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''पक्खियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''पक्खिओ अइयारो[4]''। **चातुर्मासिक प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''चाउम्मासो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''चाउम्मासियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''चाउम्मासियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''चाउम्मासिओ अइयारो[4]'' एवं **संवत्सरी प्रतिक्रमण** में ''दिवसो वइक्कंतो'' के स्थान पर ''संवच्छरो वइक्कंतो[1]'' ''देवसियं वइक्कमं'' के स्थान पर ''संवच्छरियं वइक्कमं[2]'' ''देवसियाए आसायणाए'' के स्थान पर ''संवच्छरियाए आसायणाए[3]'' ''देवसिओ अइयारो'' के स्थान पर ''संवच्छरिओ अइयारो[4]'' पाठ बोलना चाहिये।

9. समुच्चय पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 दर्शन (सम्यक्त्व) के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना के-इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार का जानते-अजानते मन, वचन, काया से सेवन किया हो, कराया हो, करते को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

10. तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स ❁देवसियस्स अइयारस्स दुब्भासिय-दुच्चिंतिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयन्तो पडिक्कमामि।

विधि- तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार वंदना करके ''श्रावक सूत्र की अनुज्ञा है'' इस प्रकार कहकर बैठकर दाहिना घुटना ऊँचा करके नवकार मंत्र, करेमि भंते बोलना फिर उसके बाद खड़े होकर मंगल पाठ म.सा. हो तो उनसे सुनें, न हों तो बड़े श्रावक से सुनें अन्यथा स्वयं कहें।

11. चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अरिहंतों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवली-प्ररूपित धर्म का शरणा।

चार शरणा, दुःख हरणा और न शरणा कोय।
जो भवि प्राणी आदरे, अक्षय अमर पद होय॥

❁ यहाँ रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइयस्स', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खियस्स', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चाउमासियस्स', संवत्सरी प्रतिक्रमण में 'संवच्छरियस्स' पाठ बोलना चाहिए।

विधि- दाहिना घुटना ऊँचा रखकर बैठें व ❁इच्छामि पडिक्कमिउं (पाठ नं. 2), इच्छाकारेणं, आगमेतिविहे, दंसण समकित, 12 व्रतों का पाठ (पाठ नं. 13) बोलें।

12. दंसण समकित का पाठ

दंसणसम्मत्त-परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थ-सेवणा वावि वावण्णकुदंसणवज्जणा, य सम्मत्त सद्दहणा।

एवं समणोवासएणं सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा- संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

13. बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

पहला अणुव्रत थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं- त्रस जीव बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय जान के पहिचान के संकल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़ निरपराधी को आकुट्टी (हनने) की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहले स्थूल-प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए❖ जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दूजा अणुव्रत थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं- कन्नालीए, ●गवालीए, भोमालीए, णासावहारो (थापण मोसो) कूडसक्खिजे (कूड़ी साख) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न

❁ प्रथम सामायिक आवश्यक में तथा पंचम कायोत्सर्ग आवश्यक में कायोत्सर्ग करने से पहले पाठ नं. 2 में 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं...' ऐसा बोलते हैं लेकिन चतुर्थ आवश्यक में मांगलिक श्रवण के पश्चात् इसी पाठ में 'इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं' के स्थान पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' कहकर शेष पाठ पूर्ण करना चाहिए।

❖ ''विच्छेए'' पाठ अशुद्ध होने के कारण ''वोच्छेए'' किया गया है।

● हारिभद्रीयावश्यकवृत्ति, आवश्यक चूर्णि आदि आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों के अनुसार 'गोवालीए' शुद्ध न होकर 'गवालिए' पाठ शुद्ध है।

कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं-सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमन्तभेए❖, मोसोवएसे कूडलेहकरणे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीजा अणुव्रत थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं- खात खनकर, गांठ खोलकर, ताले पर कूंची लगाकर, मार्ग में चलते को लूटकर, पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, ❁कूडतुलकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

चौथा अणुव्रत थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं- सदारसंतोसिए● अवसेसमेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए देव देवी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं-न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य तिर्यञ्च सम्बन्धी एगविहं एगविहेणं-न करेमि कायसा एवं चौथा स्वदार-संतोष❒ परदार-विवर्जन रूप स्थूल मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- ✷इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाँचवां अणुव्रत थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं- खेत्तवत्थु का यथा परिणाम, हिरण्ण सुवण्ण का यथापरिमाण, धन-धान्य का यथापरिमाण, दुपय-चउप्पय का यथापरिमाण, कुव्य का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं पाँचवां स्थूल परिग्रह

❖ श्राविकाएँ 'सदारमन्तभेए' के स्थान पर 'सभत्तार मंतभेए' बोलें।

❁ आवश्यक चूर्णि आदि प्राचीन ग्रंथों के अनुसार 'तुल्ल' शब्द न होकर 'तुल' शब्द है।

● श्राविकाओं को 'सदारसंतोसिए' के स्थान पर 'सभत्तार संतोसिए' बोलना चाहिए।

❒ 'स्वदार संतोष' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये और स्त्री को 'स्वपति संतोष' ऐसा बोलना चाहिए।

✷ श्राविकाएं-इत्तरियपरिग्गहिय गमणे, अपरिग्गहिय गमणे कहे।

परिमाण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे, धणधण्णपमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप- माणाइक्कमे, कुवियपमाणाइक्कमे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

छठा दिशाव्रत- उड्ढदिसि का यथा परिमाण, अहोदिसि का यथा परिमाण, तिरियदिसि का यथा परिमाण एवं यथा परिमाण किया है, उसके उपरांत स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाँच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविह❀ तिविहेणं-न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं छठे दिशाव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसि-पमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सातवां व्रत- उपभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे 1. उल्लणियाविहि, 2. ●दंतवणविहि, 3. फलविहि, 4. अब्भंगणविहि, 5. उवट्टणाविहि, 6. मज्जणविहि, 7. वत्थविहि, 8. विलेवणविहि, 9.पुप्फविहि, 10. आभरणविहि, 11. धूवणविहि, 12. पेज्जविहि, 13. भक्खविहि, 14. ओदणविहि, 15. सूवविहि, 16. विगयविहि, 17. सागविहि, 18. माहुरयविहि, 19. तेमणविहि, 20. पाणीयविहि, 21. मुहवासविहि, 22. वाहणविहि, 23. उवाणहविहि, 24. सयणविहि, 25. सचित्तविहि, 26. दव्वविहि- इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उपभोग परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवां उपभोग-परिभोग दुविहे पण्णत्ते तं जहा-भोयणाओ य, कम्मओ य, भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा ते आलोउं-सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलि-ओसहिभक्खणया

❀ 'एगविहं तिविहेणं न करेमि' की जगह कोई-कोई 'दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि' बोलते हैं।

● शुद्ध मूल पाठानुसार सातवें व्रत में अनेक शब्दों को परिवर्तित किया गया है। जैसे- 1. दंतणविहि के स्थान पर दंतवणविहि, 2. उवट्टणविहि के स्थान पर उवट्टणाविहि, 3. धूवविहि के स्थान पर धूवणविहि, 4. भक्खणविहि के स्थान पर भक्खविहि, 5. सूपविहि के स्थान पर सूवविहि, 6. माहुरविहि के स्थान पर माहुरयविहि, 7. जीमणविहि के स्थान पर तेमणविहि, 8. मुखवासविहि के स्थान पर मुहवासविहि

दुप्पउलि- ओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभक्खणया कम्मओ य णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तं जहा ते आलोउं- इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया सरदहतलायपरिसोसणया, असई-पोसणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

आठवां अणट्ठादण्ड वेरमण व्रत- चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते तं जहा-अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं आठवां अणट्ठादंड सेवन का पच्चक्खाण (जिसमें आठ आगार-आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ) जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवां अणट्ठादण्ड वेरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- कंदप्पे ❋कोक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोग-परिभोगाइरित्ते जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

नववां सामायिक व्रत- सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा● ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा फरसना है❖ एवं नववें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

दसवां देशावकाशिक व्रत- दिन प्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहों दिशाओं में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो, उसके उपरान्त आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा। जितनी भूमिका की हद रखी है, उसमें जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरान्त

❋ कुक्कुइए के स्थान पर कोक्कुइए शुद्ध पाठ है।

● प्रतिक्रमण करने वाले अधिकतर सामायिक ग्रहण किये हुए रहते हैं, अतः इस प्रकार की पंक्ति रखी गई है।

❖ जब सामायिक व्रत में न हो तब बोलना- ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊँ.....

उपभोग-परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा, वयसा, कायसा एवं दसवें देशावकाशिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-❁आणयणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पुग्गलपक्खेवे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

ग्यारहवां प्रतिपूर्ण पौषध व्रत- असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभसेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नगविलेवण का पच्चक्खाण,सत्थमुसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा❖- ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, पौषध का अवसर आये पौषध करूं तब फरसना करके शुद्ध होऊं एवं ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-अप्पडिलेहिय- दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी❐, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी, पोसहोववासस्स✷ सम्मं अणणुपालणया जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

बारहवां अतिथिसंविभाग व्रत- समणे णिग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं -असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थपडिग्गह-कंबलपायपुंछणेणं पाडिहारियपीढफलगसेज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा है, साधु-साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दूं तब शुद्ध होऊं एवं बारहवें अतिथिसंविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं-सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, ❁मच्छरिआ जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

-----●-----

❁ आणवणप्पओगे पाठ अशुद्ध होने से 'आणयणप्पओगे' पाठ किया गया है।

❖ जब पौषधव्रत में हो तब 'ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा फरसना है' एवं ग्यारहवें प्रतिपूर्ण पौषधव्रत के..... ऐसा बोलना चाहिए।

❐ मूल पाठानुसार 'भूमि' के स्थान पर 'भूमी' शुद्ध है।

✷ मूल पाठानुसार 'पोसहस्स' के स्थान पर 'पोसहोववासस्स' शुद्ध है।

❁ मूल पाठानुसार 'मच्छरिआए' के स्थान पर 'मच्छरिआ' शुद्ध है।

पच्चीस बोल का थोकड़ा

पहले बोले गति 4

नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देव गति।

प्र. गति किसे कहते हैं?

उ. संसारी जीव मरकर जहाँ जाते हैं उसको **गति** कहते हैं।

प्र. नरक गति किसे कहते हैं?

उ. नरक गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **नरक गति** कहते हैं। जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते हैं, वे मरकर नरक में जाते हैं उन्हें वहाँ घोर कष्टों का सामना करना पड़ता है।

प्र. तिर्यञ्च गति किसे कहते हैं?

उ. तिर्यञ्च गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **तिर्यञ्च गति** कहते हैं। जो जीव झूठ बोलते हैं, छल-कपट करते हैं या व्यापार में धोखा देते हैं वे मरकर प्राय: तिर्यञ्च की योनि में जाते हैं।

प्र. मनुष्य गति किसे कहते हैं?

उ. मनुष्य गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **मनुष्य गति** कहते हैं। जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान और दयालु होते हैं, वे मरकर प्राय: मनुष्य होते हैं।

प्र. देव गति किसे कहते हैं?

उ. देव गति नामकर्म के उदय से प्राप्त जीवों की गति को **देव गति** कहते हैं। जो जीव शुभकर्म करते हैं, सराग संयमादि पालते हैं वे मरकर प्राय: देव होते हैं।

दूसरे बोले जाति 5

एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

प्र. जाति किसे कहते हैं?

उ. समान इन्द्रिय वाले जीवों के समूह तथा जाति नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि रूप पर्याय (अवस्था) को

जाति कहते हैं।

- **एकेन्द्रिय :-** जिन जीवों के सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय ही हो, जैसे-मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव।
- **बेइन्द्रिय :-** जिन जीवों के स्पर्श, रसना (जिह्वा) ये दो इन्द्रियाँ हों, जैसे-शंख, सीप, जोंक, अलसिया (वर्षा के समय उत्पन्न जीव) आदि।
- **तेइन्द्रिय :-**जिन जीवों के स्पर्श, रसना, घ्राण (नासिका) ये तीन इन्द्रियाँ हों, जैसे-जूं, लीख, चींटी, कुंथवा, खटमल आदि।
- **चउरिन्द्रिय :-**जिन जीवों के स्पर्श, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियाँ हों, जैसे-मक्खी, मच्छर, भ्रमर, पतंग, बिच्छु आदि।
- **पंचेन्द्रिय :-**जिन जीवों के स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु एवं श्रोत (कर्ण) ये पाँचों इन्द्रियाँ हों, जैसे-नैरयिक, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि।

तीसरे बोले काया 6

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय।

प्र. काया किसे कहते हैं?

उ. काया का अर्थ है-एकत्र होना। जिस शरीर के रूप में पुद्गल एकत्र होते हैं उसे **काया** कहा जाता है। वह शरीर जिन जीवों का है उन्हें भी यहाँ उपचार से काया कहा है।

- **पृथ्वीकाय :-** पृथ्वी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-मिट्टी, हिंगलु, हड़ताल, पत्थर, नमक, धातु, हीरा, पन्ना आदि ।
- **अप्काय :-** पानी ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-ओस, धुँअर, कुँआ, बावड़ी, वर्षा, समुद्र आदि का पानी।
- **तेउकाय :-** अग्नि ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-झाल की अग्नि, सौर ऊर्जा, आकाश की बिजली, प्रयोग में आने वाली बिजली।
- **वायुकाय :-** हवा ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे- उक्कलिया वायु, मंडलिया वायु, घनवायु, तनवायु, पूर्वादि दिशाओं की वायु।
- **वनस्पतिकाय :-** वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर है, जैसे-वृक्ष, लता, फल, फूल, सब्जी, गेहूँ, धान आदि।

बादर वनस्पति के दो भेद-**प्रत्येक** और **साधारण**।

एक शरीर में एक जीव हो उसे 'प्रत्येक' कहते हैं। जैसे-आम, अंगूर, मोठ, बड़, पीपल, गेहूँ, धान आदि ।

जिन जीवों के आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास और शरीर ये साधाारण हों (सबके द्वारा एक साथ धारण किये जाते हों) उसको साधारण वनस्पति कहते हैं। जैसे-जमीकंद, काई, उगता हुआ अंकुर आदि।

- **त्रसकाय :-** जो जीव सर्दी, गर्मी आदि से बचने के लिए चल-फिर सकते हैं, उन्हें त्रसकाय कहते हैं। जैसे-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

चौथे बोले इन्द्रियाँ 5

श्रोतेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय।

प्र. इन्द्रिय किसे कहते हैं?

उ. इन्द्र का अर्थ है 'आत्मा'। जिसके माध्यम से छद्मस्थ आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध व स्पर्श का ज्ञान करती है उसे **इन्द्रिय** कहते हैं।

पाँचवें बोले पर्याप्ति 6

आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनः पर्याप्ति।

प्र. पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. पर्याप्ति=शक्ति सामर्थ्य।

आहारादि के पुद्‌गलों को ग्रहण करने तथा रस, शरीरादि रूप में परिणमाणे की आत्मशक्ति विशेष को **पर्याप्ति** कहते हैं।

प्र. आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. बाह्य आहार के पुद्‌गलों को ग्रहण करके खल भाग व रस भाग में विभक्त करने की शक्ति को **'आहार पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. ग्रहित आहार को सात धातुओं के रूप में परिणत करने की शक्ति को **'शरीर पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. धातुओं के रूप में परिणत आहार को स्पर्शन आदि इन्द्रिय रूप में परिणमणे की शक्ति को **'इन्द्रिय पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके श्वासोच्छ्वास रूप में परिणमणे की शक्ति को **'श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा रूप परिणमणे की शक्ति को **'भाषा पर्याप्ति'** कहते हैं।

प्र. मनः पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. मन योग्य मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके मन रूप परिणमणे की शक्ति को **'मनः पर्याप्ति'** कहते हैं।

छठे बोले प्राण 10

1. **श्रोतेन्द्रिय बलप्राण**, 2. **चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण**, 3. **घ्राणेन्द्रिय बलप्राण**, 4. **रसनेन्द्रिय बलप्राण**, 5. **स्पर्शेन्द्रिय बलप्राण** 6. **मनोबलप्राण**, 7. **वचन बलप्राण**, 8. **कायबलप्राण**, 9. **श्वासोच्छ्वास बलप्राण**, 10. **आयुष्य बलप्राण।**

प्र. प्राण किसे कहते हैं?

उ. जीवित रहने एवं इन्द्रियादि की प्रवृत्ति करने में कारणभूत शक्ति विशेष को **प्राण** कहते हैं।

सातवें बोले शरीर 5

औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण।

प्र. शरीर किसे कहते हैं?

उ. जो जीर्ण-शीर्ण होता है उसे **'शरीर'** कहते हैं।

प्र. औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उ. उदार अर्थात् स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर को **'औदारिक शरीर'** कहते हैं।

प्र. वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं?

उ. जिस शरीर से विविध अथवा विशिष्ट क्रियाएँ (छोटा-बड़ा, एक-अनेक,

दृश्य-अदृश्य आदि रूप) होती हैं एवं वैक्रिय पुद्गलों से बना होता है, उसे **'वैक्रिय शरीर'** कहते हैं।

प्र. आहारक शरीर किसे कहते हैं?

उ. आहारक पुद्गलों से बना हुआ शरीर **'आहारक शरीर'** कहलाता है।

प्र. आहारक शरीर कौन, कब और कैसा बनाते हैं?

उ. चौदह पूर्वधारी आहारक लब्धि सम्पन्न मुनिराज प्राणी दया, तीर्थंकरों की ऋद्धि दर्शन, सूक्ष्म पदार्थों को समझने एवं संशय निवारण इन चार कारणों से अति विशुद्ध स्फटिक रत्न के समान निर्मल आहारक पुद्गलों का शरीर बनाते हैं। इसकी अवगाहना जघन्य देशोन एक हाथ उत्कृष्ट परिपूर्ण एक हाथ की होती है।

प्र. तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उ. तैजस पुद्गलों से बना शरीर **'तैजस शरीर'** कहलाता है। यह उष्मारूप और आहार को पचाकर उसे रसादि में परिणत करने में सहायक है व तेजोलब्धि का हेतु है।

प्र. कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उ. जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को **'कार्मण शरीर'** कहते हैं। तैजस व कार्मण ये दो शरीर सभी संसारी जीवों में होते हैं।

आठवें बोले योग 15

मनोयोग के 4- 1. सत्य मनोयोग 2. मृषा मनोयोग 3. सत्यमृषा मनोयोग 4. असत्यमृषा* मनोयोग।

वचनयोग के 4- 1. सत्य वचनयोग, 2. असत्य वचनयोग, 3. सत्यमृषा वचनयोग, 4. असत्यमृषा वचनयोग।

काययोग के 7- 1. औदारिक काययोग, 2. औदारिक मिश्र काययोग, 3. वैक्रिय काययोग, 4. वैक्रिय मिश्र काययोग, 5. आहारक काययोग, 6. आहारक मिश्र काययोग, 7. कार्मण काययोग।

* आगमों में 'सत्य, मृषा, सत्यमृषा और असत्यमृषा' के रूप में ही मनोयोग व वचनयोग के भेदों का नामकरण किया है। अत: 'मिश्र' एवं 'व्यवहार' के स्थान पर 'सत्यमृषा' एवं 'असत्यमृषा' का प्रयोग उचित है।

प्र. योग किसे कहते हैं?

उ. मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को **योग** कहते हैं।

नौवें बोले उपयोग 12

पाँच ज्ञान-आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान*, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान।

तीन अज्ञान - मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान।

चार दर्शन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्र. उपयोग किसे कहते हैं?

उ. ज्ञान, दर्शन में होती हुई आत्म-प्रवृत्ति को **उपयोग** कहते हैं।

दसवें बोले कर्म 8

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अंतराय।

प्र. कर्म किसे कहते हैं?

उ. मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से जिन कार्मण वर्गणा रूप पुद्‌गलों का आत्मा के साथ बंध होता है उसे **कर्म** कहते हैं।

1. **ज्ञानावरणीय कर्म** -जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढाँकता है।
2. **दर्शनावरणीय कर्म**-जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढाँकता है।
3. **वेदनीय कर्म**-जिस कर्म के फल से सुख-दु:ख भोगा जाता है।
4. **मोहनीय कर्म** -जिस कर्म से आत्मा धर्म से विमुख हो, पाप में प्रवृत्त हो, क्रोध, मान, माया और लोभ में समय व्यतीत करे, जिससे आत्मा मोहित (सत्-असत् के ज्ञान से शून्य) हो जाए।
5. **आयुष्यकर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियों में रूका रहे।
6. **नामकर्म**- जिस कर्म के उदय से आत्मा गति आदि नाना पर्यायों का अनुभव करे।

* यद्यपि मतिज्ञान एवं आभिनिबोधिक ज्ञान में कोई अंतर नहीं है तथापि शास्त्रकारों द्वारा मतिज्ञान के प्रसंग पर अधिकांशत: 'आभिनिबोधिक ज्ञान' इस प्रकार का प्रयोग किये जाने से यहाँ भी 'आभिनिबोधिक ज्ञान' को ही प्रधानता दी है। 'मति' शब्द का प्रयोग ज्ञान एवं अज्ञान दोनों के लिए हो सकता है किंतु 'आभिनिबोधिक ज्ञान' शब्द का प्रयोग मात्र ज्ञान के लिए ही होता है।

7. **गोत्र कर्म**- जिस कर्म के उदय से जीव उच्च-नीच जाति आदि को प्राप्त करके उच्च-नीच कहलाए।

8. **अंतराय कर्म**- जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

ग्यारहवें बोले गुणस्थान 14

1. मिथ्यादृष्टि* गुणस्थान 2. सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान 3. सम्यग्-मिथ्या❖ (मिश्र) दृष्टि गुणस्थान 4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान 5. देशविरत गुणस्थान 6. प्रमादी साधु गुणस्थान 7. अप्रमादी साधु गुणस्थान 8. निवृत्ति बादर गुणस्थान 9. अनिवृत्ति बादर गुणस्थान 10. सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान 11. उपशांत मोहनीय गुणस्थान 12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान 13. सयोगि-केवलि गुणस्थान 14. अयोगि-केवलि* गुणस्थान

प्र. जीवों की क्रमशः उन्नत अवस्थाओं को जैन शास्त्रों में क्या कहते हैं?

उ. गुणस्थान (जीवस्थान)।

प्र. गुणस्थान की परिभाषा क्या है?

उ. संसारी आत्मा के ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों की शुद्धि-अशुद्धि और उत्कर्ष-अप्कर्ष की अवस्था विशेष को **'गुणस्थान'** कहते हैं।

बारहवें बोले पाँच इन्द्रियों के 23 विषय और 240 विकार

1. **श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय**- जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। ये तीन शुभ और तीन अशुभ, इन 6 पर राग और 6 पर द्वेष-इस प्रकार 12 विकार।

2. **चक्षुरिन्द्रिय के पाँच विषय**- काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। ये पाँच सचित्त, पाँच अचित्त और पाँच मिश्र, ये 15 शुभ और 15 अशुभ, इन 30 पर राग और 30 पर द्वेष-इस प्रकार 60 विकार।

---

* मिथ्यात्व आदि शब्दों के स्थान पर थोकड़े में श्रीमद् समवायांग सूत्र के अनुसार मिथ्यादृष्टि आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण 'गुणस्थान स्वरुप' के नाम द्वार की टिप्पण में देखें।

❖ श्रीमद् समवायांग सूत्र के अनुसार 'सम्यग् मिथ्या' शब्द का प्रयोग उपयुक्त है। अतः इसे प्रधानता दी है।

* समास युक्त पद होने से 'गि' व 'लि' में ह्रस्व इकार का प्रयोग समुचित है।

3. **घ्राणेन्द्रिय के दो विषय**- सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध।
ये दो सचित्त, दो अचित्त और दो मिश्र, इन 6 पर राग और 6 पर द्वेष-इस प्रकार 12 विकार।

4. **रसनेन्द्रिय के पाँच विषय**- तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा।
ये पाँच सचित्त, पाँच अचित्त और पाँच मिश्र, ये 15 शुभ और 15 अशुभ, इन 30 पर राग और 30 पर द्वेष-इस प्रकार 60 विकार।

5. **स्पर्शेन्द्रिय के आठ विषय**- कर्कश (Hard), मृदु (Soft), गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध (Smooth) और रुक्ष (Rough)*।
ये 8 सचित्त, 8 अचित्त और 8 मिश्र, ये 24 शुभ और 24 अशुभ, इन 48 पर राग और 48 पर द्वेष-इस प्रकार 96 विकार।

प्र. विषय किसे कहते हैं?

उ. जीव इन्द्रियों के द्वारा जिन शब्द, रूप आदि को ग्रहण करता है उसे **'विषय'** कहते हैं।

प्र. विकार किसे कहते हैं?

उ. विषयों पर होने वाली राग और द्वेष की परिणति को **'विकार'** कहते हैं।

---

* स्पर्शेन्द्रिय के विषयों का क्रम श्रीमद् प्रज्ञापना सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र आदि के अनुसार इसी प्रकार उपयुक्त है। कोष्ठक में दिये अंग्रेजी शब्द कर्कश व रुक्ष तथा मृदु व स्निग्ध का अंतर समझाने के लिए है।

विकारों के स्वरूप को इस प्रकार समझा जा सकता है:-

यथा-श्रोतेन्द्रिय के विषय-जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। तीन शुभ एवं तीन अशुभ यानि जीव शब्द शुभ, जीव शब्द अशुभ, अजीव शब्द शुभ, अजीव शब्द अशुभ, मिश्र शब्द शुभ, मिश्र शब्द अशुभ। इन छः पर राग और छः पर द्वेष अर्थात्

पहला विकार :- जीव शब्द शुभ पर राग
दूसरा विकार :- जीव शब्द शुभ पर द्वेष
तीसरा विकार :- जीव शब्द अशुभ पर राग
चौथा विकार :- जीव शब्द अशुभ पर द्वेष
पाँचवा विकार :- अजीव शब्द शुभ पर राग
छठा विकार :- अजीव शब्द शुभ पर द्वेष
सातवाँ विकार :- अजीव शब्द अशुभ पर राग
आठवाँ विकार :- अजीव शब्द अशुभ पर द्वेष
नवाँ विकार :- मिश्र शब्द शुभ पर राग
दसवाँ विकार :- मिश्र शब्द शुभ पर द्वेष
ग्यारहवाँ विकार :- मिश्र शब्द अशुभ पर राग
बारहवाँ विकार :- मिश्र शब्द अशुभ पर द्वेष

प्र. श्रोतेन्द्रिय में सचित्त, अचित्त और मिश्र भेद क्यों नहीं लिये?

उ. कारण कि सचित्त का समावेश जीव में और अचित्त का समावेश अजीव में हो जाता है।

प्र. घ्राणेन्द्रिय में शुभाशुभ भेद क्यों नहीं है?

उ. सुरभिगंध का तात्पर्य शुभ से व दुरभिगंध का तात्पर्य अशुभ से है।

तेरहवें बोले मिथ्यात्व के 10 भेद

1. अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व 2. धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व 3. संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, 4. मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, 5. अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व 6. जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व 7. असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व 8. साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व 9. आठ कर्मों से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व 10. आठ कर्मों से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व।■

प्र. मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ. मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव आदि जो तत्त्व जैसे हैं, वैसा नहीं मानना, न्यूनाधिक मानना तथा विपरीत मानना **मिथ्यात्व** है।

(यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि राग एवं द्वेष ही विकार है, इनके जुड़ने पर ही विकार की संज्ञा बनती है।)

चक्षुरिन्द्रिय में काले वर्ण के बारह विकार इस प्रकार समझे जा सकते हैं-

1. काला सचित शुभ पर राग
2. काला सचित शुभ पर द्वेष
3. काला सचित अशुभ पर राग
4. काला सचित अशुभ पर द्वेष
5. काला अचित शुभ पर राग
6. काला अचित शुभ पर द्वेष
7. काला अचित अशुभ पर राग
8. काला अचित अशुभ पर द्वेष
9. काला मिश्र शुभ पर राग
10. काला मिश्र शुभ पर द्वेष
11. काला मिश्र अशुभ पर राग
12. काला मिश्र अशुभ पर द्वेष

काले के समान ही नीले, लाल, पीले एवं सफेद वर्ण के लिये समझना चाहिये।

■ श्रीमद् स्थानांग सूत्र (स्थान 10) के अनुसार मिथ्यात्व के भेदों का क्रम इसी प्रकार उपयुक्त है।

चौदहवें बोले नवतत्त्व के संक्षेप में 115 भेद

नव तत्त्वों के नाम-1. जीव तत्त्व 2. अजीव तत्त्व 3. पुण्य तत्त्व 4. पाप तत्त्व 5. आस्रव तत्त्व 6. संवर तत्त्व 7. निर्जरा तत्त्व 8. बंध तत्त्व 9. मोक्ष तत्त्व।

नव तत्त्वों के भेद-जीव के 14, अजीव के 14, पुण्य के 9, पाप के 18, आस्रव के 20, संवर के 20, निर्जरा के 12, बंध के 4, मोक्ष के 4-कुल मिलाकर 115 भेद हुए।

प्र. तत्त्व किसे कहते हैं?

उ. वस्तु के (जीव, अजीव आदि के) वास्तविक स्वरूप को **तत्त्व** कहते हैं।

जीव के 14 भेद :-

सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
बादर एकेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
द्वीन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
त्रीन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
चतुरिन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
असन्नी पंचेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त
सन्नी पंचेन्द्रिय के दो भेद	अपर्याप्त और पर्याप्त

प्र. जीव किसे कहते हैं?

उ. जो प्राणों को धारण करता है उसे **जीव** कहते हैं।

प्र. सूक्ष्म जीव किसे कहते हैं?

उ. सूक्ष्म नाम कर्म के उदय के फलस्वरूप जिन जीवों को इतना सूक्ष्म शरीर प्राप्त होता है कि जो अग्नि, जल, शस्त्र आदि किसी बाह्य साधन से जलाया, गलाया या नष्ट नहीं किया जा सकता है तथा जिनका समुदाय भी इन्द्रियों द्वारा जाना नहीं जा सके उन्हें **सूक्ष्म जीव** कहते हैं। केवलज्ञानी ही इन्हें देख सकते हैं। सूक्ष्म नामकर्म का उदय एकेन्द्रिय में ही होता है।

प्र. बादर जीव किसे कहते हैं?

उ. बादर नामकर्म के उदय के फलस्वरूप जिन जीवों को ऐसा स्थूल (बादर) शरीर प्राप्त होता है कि जो अग्नि, जल, शस्त्र आदि बाह्य

साधनों से जलाया, गलाया अथवा नष्ट किया जा सकता है, उन्हें **बादर जीव** कहते हैं। एक बादर शरीर को अथवा अनेक बादर शरीरों के समुदाय को इन्द्रियों द्वारा जाना जा सकता है। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर दोनों ही होते हैं किंतु बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय सभी जीव बादर ही होते हैं।

प्र. पर्याप्त और अपर्याप्त किसे कहते हैं?

उ. जिस जीव में जितनी पर्याप्तियाँ कही गई हैं, उन सभी पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेने पर वह जीव **पर्याप्त** कहलाता है। जैसे-एकेन्द्रिय जीव को आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ होती हैं। जब जीव इनको पूरा कर लेता है, तब वह पर्याप्त कहलाता है तथा स्वप्रायोग्य पर्याप्तियों को जब तक पूर्ण नहीं कर लेता है तब तक **अपर्याप्त** कहलाता है। ऐसे ही द्वीन्द्रियादि जीवों में भी समझना चाहिए।

प्र. संज्ञी और असंज्ञी किसे कहते हैं?

उ. जो मन वाले होते हैं उनको **संज्ञी** कहते हैं। मन पंचेन्द्रिय जीवों के ही होता है। जैसे-गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, देव तथा नैरयिक जीव। जिन जीवों के मन नहीं होता है उनको **असंज्ञी** कहते हैं। जैसे-एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम मनुष्य एवं बिना गर्भ से उत्पन्न तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव।

अजीव के 14 भेद :-

अरूपी अजीव के 10 भेद■- 1. धर्मास्तिकाय, 2. धर्मास्तिकाय का देश, 3. धर्मास्तिकाय के प्रदेश, 4. अधर्मास्तिकाय 5. अधर्मास्तिकाय

■ 'श्रीमद् भगवती सूत्र' श. 2 उ. 10 में कहा है कि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय आदि के समग्र प्रदेशों के समूह को ही धर्मास्तिकाय आदि कहा जा सकता है, उसके किसी देश-प्रदेश को नहीं। सामान्यतया व्यवहार में भेदों को मूल वस्तु के नाम से पुकार सकते हैं। जैसे-संसारी जीव के पाँच भेद-1. एकेन्द्रिय 2. द्वीन्द्रिय 3. त्रीन्द्रिय 4. चतुरिन्द्रिय 5. पंचेन्द्रिय। इन पाँच भेदों में से किसी भी एक भेद को 'संसारी जीव' कह सकते हैं। इसी प्रकार 'धर्मास्तिकाय के तीन भेद-स्कंध, देश, प्रदेश'। ऐसा कहने पर देश-प्रदेश को भी धर्मास्तिकाय की संज्ञा प्राप्त हो जाती है, जो कि आगमकारों को इष्ट नहीं है। (इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय व आकाशास्तिकाय के लिए समझना चाहिए) अतः यहाँ पूर्व की शैली में परिवर्तन करके उपर्युक्त शैली को स्वीकार किया गया है। अजीव के भेदों का वर्णन आगमों (प्रज्ञापना पद 1 एवं उत्तराध्ययन अ. 36) में इसी प्रकार प्ररूपित है।

का देश, 6. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, 7. आकाशास्तिकाय, 8. आकाशास्तिकाय का देश, 9. आकाशास्तिकाय के प्रदेश और 10. काल।

रूपी पुद्‌गल के 4 भेद :- 1. स्कंध, 2. स्कंध का देश, 3. स्कंध के प्रदेश, 4. परमाणु पुद्‌गल। ये 14 भेद अजीव के हुए।

प्र. अजीव किसे कहते हैं?

उ. जो सर्वथा चेतना शून्य (जड़) हो उसे **'अजीव'** कहते हैं।

प्र. अस्तिकाय किसे कहते हैं?

उ. अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह, यानि प्रदेशों के समूह को **'अस्तिकाय'** कहते हैं।

प्र. धर्मास्तिकाय किसे कहते हैं?

उ. जीव और पुद्‌गल जिस द्रव्य की सहायता से हलन-चलन करते हैं, उस द्रव्य का नाम **'धर्मास्तिकाय'** है। जैसे-मछली के हलन-चलन में पानी सहायक होता है अथवा पटरी रेल के चलने में सहायक होती है। यह द्रव्य चलने की प्रेरणा नहीं देता है, परंतु स्वभावत: गति परिणत जीवों और पुद्‌गलों का सहायक होता है।

प्र. अधर्मास्तिकाय किसे कहते हैं?

उ. जीव और पुद्‌गलों की स्थिरता में सहायक द्रव्य का नाम **'अधर्मास्तिकाय'** है जैसे-थके हुए पथिक को ठहरने में छाया उपकारक होती है अथवा जैसे उड़ते हुए विमान (Aeroplane) को पत्तन (Airport) रूकने में उपकारक होता है, वैसे ही यह द्रव्य स्थिर होने के लिए विवश नहीं करता, परंतु स्थिर होते हुए पदार्थ का सहायक हो जाता है।

प्र. आकाशास्तिकाय किसे कहते हैं?

उ. जो सब द्रव्यों को जगह (स्थान) देता है उसे **'आकाशास्तिकाय'** कहते हैं। जैसे-दूध शक्कर को एवं पानी नमक को स्थान देता है।

प्र. आकाश के कितने भेद हैं?

उ. **लोकाकाश** (जहाँ सभी द्रव्य रहते हैं) और **अलोकाकाश** (सिर्फ आकाश) की अपेक्षा इसके दो भेद हैं।

प्र. काल द्रव्य किसे कहते हैं?

उ. जो द्रव्यों के परिणमने में सहायक हो अर्थात् नये-पुराने, छोटे-बड़े आदि की पहचान जिस द्रव्य से होती है, उसे **'काल द्रव्य'** कहते हैं। समय, आवलिका, मुहूर्त, प्रहर, दिन-रात, मास, वर्ष आदि व्यवहार इसी द्रव्य के आधार से किये जाते हैं।

प्र. काल को अस्तिकाय क्यों नहीं कहते हैं?

उ. काल अप्रदेशी होने से अर्थात् प्रदेशों के समूह रूप न होने से काल द्रव्य को अस्तिकाय नहीं कहा गया है।

प्र. पुद्गलास्तिकाय किसे कहते हैं?

उ. जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हों, जो मिलते-बिखरते हों, उसे **'पुद्गल'** कहते हैं तथा लोक में रहे हुए समग्र पुद्गलों के समूह को **पुद्गलास्तिकाय** कहते हैं। संसार में हम जिन पदार्थों को देखते हैं, वे सब पुद्गल हैं। बिखरना और एकत्रित होना, ये सब क्रियाएँ पुद्गलों में होती है। जब तक जीव के साथ इनका संबंध बना रहता है तब तक इन्हें सचित्त कहा जाता है जीव से संबंध अलग होते ही अपने स्वरूप में अचित्त हो जाते हैं जैसे-निर्जीव शरीर। यह द्रव्य संसारी जीवों की प्रवृत्तियों में विशेष सहायक होता है।

प्र. प्रदेश किसे कहते हैं?

उ. स्कंध से जुड़ा हुआ अविभाज्य अंश **'प्रदेश'** कहलाता है।

प्र. देश किसे कहते हैं?

उ. स्कंध के अनेक प्रदेशों के समुदाय रूप विभाग को **'देश'** कहते हैं।

प्र. परमाणु किसे कहते हैं?

उ. पुद्गल के अति सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, उसे **'परमाणु'** कहते हैं।

प्र. परमाणु और प्रदेश में क्या अंतर है?

उ. प्रदेश स्कंध से मिले हुए होते हैं जबकि परमाणु उससे पृथक होता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेश पृथक नहीं हो सकते हैं। अतः इन द्रव्यों में परमाणु नहीं कहा गया है। रूपी अजीव द्रव्य में ही परमाणु होते हैं किंतु हम आँख से या किसी यंत्र के सहारे से इसे नहीं देख सकते हैं।

पुण्य के 9 भेद❋ :-

1. **अन्न पुण्य**- अन्न देने से पुण्य होता है।
2. **पान पुण्य** - पानी देने से पुण्य होता है।
3. **वस्त्र पुण्य** - वस्त्र देने से पुण्य होता है।
4. **लयन पुण्य**- जगह देने से पुण्य होता है।
5. **शयन पुण्य**- शय्या, पाट, पाटला आदि देने से पुण्य होता है।
6. **मन पुण्य**- शुभ मन रखने से पुण्य होता है।
7. **वचन पुण्य** - शुभ वचन बोलने से पुण्य होता है।
8. **काय पुण्य** - शरीर द्वारा सेवा तथा विनय करने से पुण्य होता है।
9. **नमस्कार पुण्य** - गुणवान को नमस्कार करने से पुण्य होता है।

प्र. पुण्य किसे कहते हैं?

उ. जो आत्मा को पवित्र करे और जिससे प्राणियों को सुख की प्राप्ति हो, उसे **'पुण्य'** कहते हैं। यह शुभ योगों से बंधता है।

पाप के 18 भेद :-

1. **प्राणातिपात**-जीवों की हिंसा करना।
2. **मृषावाद**-झूठ बोलना।
3. **अदत्तादान**-चोरी करना।
4. **मैथुन**-कुशील सेवन करना।
5. **परिग्रह**-ममता मूर्च्छा करना।
6. **क्रोध**-रोष करना।
7. **मान**-अहंकार करना।
8. **माया**-छल-कपट करना।
9. **लोभ**-लालच तृष्णा बढ़ाना।
10. **राग**-स्नेह प्रीति करना।
11. **द्वेष**-वैर करना।
12. **कलह**-क्लेश करना।
13. **अभ्याख्यान**-झूठा कलंक चढ़ाना।

❋ श्रीमद् स्थानांग सूत्र (स्थान 9) के अनुसार पुण्य के भेदों का क्रम इसी प्रकार उपयुक्त है।

14. **पैशुन्य**-चुगली करना।
15. **पर-परिवाद**-दूसरों की निंदा करना।
16. **रति-अरति**-मनोज्ञ वस्तुओं पर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ वस्तुओं पर नाराज होना।
17. **माया-मृषावाद**-छल-कपट के साथ झूठ बोलना।
18. **मिथ्यादर्शन शल्य**-कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा करना।

प्र. पाप किसे कहते हैं?

उ. जो आत्मा को मलिन करे, जो अशुभ योगों से बंधे और दु:खपूर्वक भोगा जाए उसे **'पाप'** कहते हैं।

आस्रव के 20 भेद :-

1. **मिथ्यात्व आस्रव**-मिथ्यात्व का सेवन करे तो आस्रव।
2. **अविरति आस्रव**-प्रत्याख्यान नहीं करे तो आस्रव।
3. **प्रमाद आस्रव**-पाँच प्रमाद का सेवन करे तो आस्रव।
4. **कषाय आस्रव**-क्रोध, मान, माया और लोभ का सेवन करे तो आस्रव।
5. **योग आस्रव**-योग प्रवर्तावे तो आस्रव❀।
6. **प्राणातिपात आस्रव**-जीव हिंसा करे तो आस्रव।
7. **मृषावाद आस्रव**-झूठ बोले तो आस्रव।
8. **अदत्तादान आस्रव**-चोरी करे तो आस्रव।
9. **मैथुन आस्रव**-कुशील सेवे तो आस्रव।
10. **परिग्रह आस्रव**-ममता मूर्च्छा करे तो आस्रव।
11. **श्रोतेन्द्रिय आस्रव**-श्रोतेन्द्रिय वश में नहीं रखे तो आस्रव।
12. **चक्षुन्द्रिय आस्रव**-चक्षुन्द्रिय वश में नहीं रखे तो आस्रव।
13. **घ्राणेन्द्रिय आस्रव**-घ्राणेन्द्रिय वश में नहीं रखे तो आस्रव।
14. **रसनेन्द्रिय आस्रव**-रसनेन्द्रिय वश में नहीं रखे तो आस्रव।
15. **स्पर्शेन्द्रिय आस्रव**-स्पर्शेन्द्रिय वश में नहीं रखे तो आस्रव।
16. **मन आस्रव**-मन वश में नहीं रखे तो आस्रव।
17. **वचन आस्रव**-वचन वश में नहीं रखे तो आस्रव।

❀ श्रीमद् स्थानांग सूत्र स्थान 5 उद्देशक 2 में 'योग' को आस्रव कहा है।

18. **काया आस्त्रव**-काया वश में नहीं रखे तो आस्त्रव।
19. **उपकरण आस्त्रव**-भंड उपकरण अयतना से लेवे और अयतना से रखे तो आस्त्रव।
20. **सुई कुशाग्र आस्त्रव**-सुई कुशाग्र मात्र अयतना से लेवे और अयतना से रखे तो आस्त्रव।

प्र. आस्त्रव तत्त्व किसे कहते हैं?

उ. जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ, अशुभ कर्म आते हैं उसे आस्त्रव कहते हैं। जीव रूपी तालाब में कर्म रूपी पानी आस्त्रव रूपी नालों द्वारा आता है।

संवर के 20 भेद :-

1. **समकित संवर**
2. **विरति संवर**-व्रत प्रत्याख्यान करे तो संवर।
3. **अप्रमाद संवर**-प्रमाद नहीं करे तो संवर।
4. **अकषाय संवर**-कषाय नहीं करे तो संवर।
5. **अयोग संवर**-योग नहीं प्रवर्तावे तो संवर✣।
6. **प्राणातिपात विरमण**-जीव हिंसा न करे तो संवर।
7. **मृषावाद विरमण**-झूठ नहीं बोले तो संवर।
8. **अदत्तादान विरमण**-चोरी नहीं करे तो संवर।
9. **मैथुन विरमण**-कुशील नहीं सेवे तो संवर।
10. **परिग्रह विरमण**-मूर्च्छा संग्रह नहीं रखे तो संवर।
11. **श्रोतेन्द्रिय संवर**-श्रोतेन्द्रिय वश में करे तो संवर।
12. **चक्षुरिन्द्रिय संवर**-चक्षुरिन्द्रिय वश में करे तो संवर।
13. **घ्राणेन्द्रिय संवर**-घ्राणेन्द्रिय वश में करे तो संवर।
14. **रसनेन्द्रिय संवर**-रसनेन्द्रिय वश में करे तो संवर।
15. **स्पर्शेन्द्रिय संवर**-स्पर्शेन्द्रिय वश में करे तो संवर।
16. **मन संवर**-मन वश में करे तो संवर।
17. **वचन संवर**-वचन वश में करे तो संवर।

✣ श्रीमद् स्थानांग सूत्र स्थान 5 उद्देशक 2 में 'अयोग' को **संवर** कहा है।

18. **काया संवर**-काया वश में करे तो संवर।
19. **उपकरण संवर**-भंड उपकरण यतना से लेवे और यतना से रखे तो संवर।
20. **सुई कुशाग्र संवर**-सुई कुशाग्र मात्र यतना से लेवे और यतना से रखे तो संवर।

प्र. संवर किसे कहते हैं?

उ. जिस क्रिया के द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्मों का आना रूकता है, उसे **'संवर'** कहते हैं। जीव रूपी तालाब में आस्रव रूपी नालों द्वारा आता हुआ कर्म रूपी पानी सम्यक्त्व, व्रत, प्रत्याख्यानादि द्वारा रूकता है।

निर्जरा के 12 भेद :-

1. **अनशन** (उपवास आदि करना)
2. **ऊनोदरी** (भूख से कम खाना)
3. **भिक्षाचर्या●** (साधुवृत्ति के अनुसार भिक्षा मांगना)
4. **रस परित्याग** (विगयादि का त्याग)
5. **काय क्लेश** (आसनादि लगाना)
6. **प्रतिसंलीनता** (इन्द्रियों आदि को वश में करना)
7. **प्रायश्चित्त** (दण्ड लेना)
8. **विनय** (विनय करना)
9. **वैयावृत्य** (सेवा करना)
10. **स्वाध्याय** (पढ़ना-पढ़ाना)
11. **ध्यान** (चित्त को एकाग्र करना)
12. **व्युत्सर्ग** (काया के व्यापार का त्याग करना)

प्र. निर्जरा किसे कहते हैं?

उ. आत्मा पर लगे हुए कर्मों का आंशिक रूप से अलग होना **'निर्जरा'** है। उपवासादि 12 प्रकार के तप से कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा के दो भेद- **सकाम** और **अकाम**। सकाम निर्जरा ही मुक्ति को प्राप्त करने में सहायक बनती है।

●'भिक्षाचर्या' नामक तप श्रीमद् स्थानांगसूत्रादि में उल्लिखित है। श्रीमद् समावायांग सूत्र में इसके स्थान पर 'वृत्तिसंक्षेप' शब्द का प्रयोग हुआ है।

बंध के 4 भेद :-

1. प्रकृति बंध, 2. स्थिति बंध, 3. अनुभाग बंध, 4. प्रदेश बंध।

प्र. बंध तत्त्व किसे कहते हैं?

उ. कषाय व योग के निमित्त से आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों के मिलने को **'बंध'** कहते हैं। जैसे-दूध और पानी, लोहपिण्ड और अग्नि की तरह एकमेक होना।

प्रकृति बंध (Nature)-जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलों में अलग-अलग स्वभाव का पैदा होना 'प्रकृति बंध' है।

स्थिति बंध (Duration)-जीव के द्वारा ग्रहण किए गये कर्म पुद्गल अमुक काल तक अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए जीव के साथ रहने की काल मर्यादा को 'स्थिति बंध' कहते हैं।

अनुभाग बंध (Intensity)-जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गलों में फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना 'अनुभाग बंध' कहलाता है।

प्रदेश बंध (Mass)-जीव के साथ न्यूनाधिक प्रदेश वाले कर्म स्कंधों का संबंध होना 'प्रदेश बंध' कहलाता है।

'प्रकृति बंध' और 'प्रदेश बंध' का कारण **'योग'** है तथा 'स्थिति बंध' और 'अनुभाग बंध' का कारण **'कषाय'** है।

मोक्ष के 4 उपाय :-

1. सम्यक् दर्शन, 2. सम्यक् ज्ञान, 3. सम्यक् चारित्र, 4. सम्यक् तप।

1. **सम्यक् दर्शन**- जिनेश्वर भगवान के वचनों पर शुद्ध श्रद्धा करना।
2. **सम्यक् ज्ञान**- श्रद्धापूर्वक सच्चे ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहते हैं।
3. **सम्यक् चारित्र**- दर्शन और ज्ञानपूर्वक सत् आचरण करना।
4. **सम्यक् तप**- आत्मशुद्धि के लिए विशिष्ट अनुष्ठान करना।

प्र. निर्जरा एवं मोक्ष में क्या अंतर है?

उ. कर्मों के एक देश (हिस्से) का आत्मा से अलग होना **'निर्जरा'** है तथा सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से अलग होना **'मोक्ष'** है।

पन्द्रहवें बोले आत्मा 8

1. द्रव्य आत्मा 2. कषाय आत्मा 3. योग आत्मा 4. उपयोग आत्मा

5. ज्ञान आत्मा 6. दर्शन आत्मा 7. चारित्र आत्मा 8. वीर्य आत्मा।

1. **द्रव्य आत्मा**–त्रिकालवर्ती, असंख्य प्रदेशी, द्रव्य रूप आत्मा।
2. **कषाय आत्मा**–क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय युक्त आत्मा।
3. **योग आत्मा**–मन, वचन और काया रूप योग आत्मा।
4. **उपयोग आत्मा**–पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन रूप उपयोग युक्त आत्मा।
5. **ज्ञान आत्मा**–मतिज्ञानादि रूप ज्ञान युक्त आत्मा।
6. **दर्शन आत्मा**–चक्षुदर्शनादि (निराकारोपयोग) रूप दर्शन युक्त आत्मा।
7. **चारित्र आत्मा**–सामायिक चारित्र आदि रूप चारित्र युक्त आत्मा।
8. **वीर्य आत्मा**–उत्थान आदि रूप वीर्य युक्त आत्मा।

प्र. आत्मा किसे कहते हैं?

उ. जो ज्ञानादि पर्यायों में निरंतर गमन करे उसे **आत्मा** कहते हैं।

सोलहवें बोले दण्डक 24

नैरयिकों का एक दण्डक●। नैरयिक सात पृथ्वियों में रहते हैं। उन पृथ्वियों के नाम–घम्मा, वंसा, सेला❋, अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई।

इनके गोत्र–रत्न प्रभा, शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पंक प्रभा, धूम प्रभा, तमः प्रभा और तमस्तमः प्रभा।

दस भवनपतियों के 10 दण्डक :-

1. असुरकुमार 2. नागकुमार 3. सुपर्णकुमार❖ 4. विद्युतकुमार 5. अग्निकुमार 6. द्वीपकुमार 7. उदधिकुमार 8. दिशाकुमार 9. पवनकुमार 10. स्तनितकुमार।

पाँच स्थावरों के 5 दण्डक :-

पाँच स्थावरों के नाम–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और

● श्रीमद् स्थानांग सूत्र के प्रथम स्थान में चतुर्विंशतिदण्डक का निरुपण करते हुए 'नेरइयाणं एगावग्गणा' ऐसा पाठ है, किंतु सात नरकों की एक वर्गणा' ऐसा कथन नहीं है अतः 'सात नरकों' की जगह 'नैरयिकों' इस शब्द का प्रयोग समीचीन है।

❋ श्रीमद् स्थानांग सूत्र आदि के अनुसार 'सेला' शब्द ही ठीक है, 'सिला' नहीं।

❖ प्राकृत शब्द 'सुवण्ण कुमार' का तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार संस्कृत रुपान्तर 'सुपर्णकुमार' है। अन्य प्रमाणों से भी हिन्दी में 'सुपर्णकुमार' शब्द ही उचित है।

वनस्पतिकाय।

तीन विकलेन्द्रिय के 3 दण्डक :-

तीन विकलेन्द्रियों के नाम- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय।

तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का एक दण्डक, मनुष्य का एक दण्डक, वाणव्यंतर देवता का एक दण्डक, ज्योतिषी देवता का एक दण्डक, वैमानिक देवता का एक दण्डक। ये सब चौबीस दण्डक हुए।

(1+10+5+3+1+1+1+1+1=24)

प्र. दण्डक किसे कहते हैं?

उ. अपने किये गये कर्मों का जहाँ दण्ड भोगा जाता है, वे स्थान **'दण्डक'** कहे जाते हैं।

प्र. विकलेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उ. जिनको पाँचों इन्द्रियाँ पूरी न मिली हों, जैसे बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय आदि। कहीं-कहीं एकेन्द्रिय को भी विकलेन्द्रिय माना गया है।

प्र. तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उ. तिर्यञ्च गति वाले जिन जीवों में पाँचों इन्द्रियाँ पायी जाती हों। जैसे-मछली, पशु, पक्षी, सर्प, नेवला आदि।

सतरहवें बोले लेश्या 6

1. कृष्ण लेश्या 2. नील लेश्या 3. कापोत लेश्या 4. तेजो लेश्या 5. पद्म लेश्या 6. शुक्ल लेश्या

प्र. लेश्या किसे कहते हैं?

उ. योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणामों को **'लेश्या'** कहते हैं।

षट्लेश्या का दृष्टांत :-

छः पुरुषों ने एक जामुन का वृक्ष देखा। वृक्ष पके हुए फलों से लदा था, शाखाएँ नीचे की ओर झुकी हुई थी। उसे देखकर उन्हें फल खाने की इच्छा हुई। वे सोचने लगे-किस प्रकार इसके फल खाये जाएँ? एक ने कहा-वृक्ष पर चढ़ने से गिरने का डर है, इसलिए इसे जड़ से काटकर गिरा दें और सुख से बैठकर फल खावें। यह सुनकर दूसरे ने कहा-वृक्ष को जड़ से काटकर गिराने से क्या लाभ? केवल बड़ी-बड़ी डालियाँ ही क्यों न काट

ली जाएँ। इस पर तीसरा बोला-बड़ी डालियाँ न काटकर छोटी-छोटी डालियाँ ही क्यों न काट ली जाएँ? क्योंकि फल तो छोटी डालियों में ही लगे हुए हैं। चौथे को यह बात पसंद नहीं आई, उसने कहा-केवल फलों के गुच्छें ही तोड़े जाएँ। हमें तो फलों से ही प्रयोजन है। पाँचवें ने कहा-गुच्छे भी तोड़ने की जरूरत नहीं है केवल पके हुए फल ही नीचे गिरा दिये जाएँ। यह सुनकर छठे ने कहा-जमीन पर काफी फल गिरे हुए हैं, उन्हें ही खा लें। अपना मतलब तो इन्हीं से सिद्ध हो जाएगा।

लेश्याओं में क्रमशः विशुद्धि की अधिकता है। इसी प्रकार कृष्ण लेश्या के परिणामों में संक्लेश सर्वाधिक होता है। नील-कापोत आदि लेश्याओं में संक्लेश क्रमशः कम होता रहता है एवं विशुद्धि क्रमशः बढ़ती रहती है यावत् शुक्ल लेश्या में संक्लेश सबसे कम एवं विशुद्धि सर्वाधिक होती है।

इन छः लेश्याओं में प्रथम तीन अशुभ और अधर्म लेश्याएँ हैं। इन लेश्याओं में अशुभ गति का बंध होता है। शेष तीन लेश्याएँ शुभ व धर्म लेश्याएँ हैं। इन लेश्याओं में शुभ गति का बंध होता है।

अठारहवें बोले दृष्टि 3

1. सम्यक् दृष्टि 2. मिथ्या दृष्टि 3. सम्यक् मिथ्या दृष्टि

प्र. दृष्टि किसे कहते हैं?

उ. यद्यपि दृष्टि शब्द का अर्थ नेत्र ज्योति या देखने की शक्ति से होता है, परंतु प्रस्तुत प्रकरण में दृष्टि का अर्थ मान्यता या सिद्धांत है। देव, गुरु, धर्म एवं जीवादि तत्त्व विषयक श्रद्धा विशेष को **'दृष्टि'** कहते हैं।

सम्यक् दृष्टि-वीतराग देव की वाणी पर सर्वथा रूचि रखने वाला।

मिथ्या दृष्टि-वीतराग वाणी पर देशतः या सर्वतः अरूचि रखने वाला।

सम्यक् मिथ्या दृष्टि-वीतराग वाणी के प्रति न रूचि और न अरूचि रखने वाला।

उन्नीसवें बोले ध्यान 4

1. आर्त्त ध्यान 2. रौद्र ध्यान 3. धर्म ध्यान 4. शुक्ल ध्यान।

प्र. ध्यान किसे कहते हैं?

उ. एक वस्तु या विषय पर मन को स्थिर करना। पहले के दोनों ध्यान अशुभ हैं, शेष दोनों शुभ हैं।

बीसवें बोले षट्द्रव्यों के 30 भेद

षट् द्रव्य के नाम :-

1. धर्मास्तिकाय, 2. अधर्मास्तिकाय, 3. आकाशास्तिकाय, 4. काल द्रव्य, 5. जीवास्तिकाय, 6. पुद्‌गलास्तिकाय।

सभी को 5-5 बोलों से जाना जाता है।

1. धर्मास्तिकाय के 5 भेद-

धर्मास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है-

1. **द्रव्य से**-एक द्रव्य
2. **क्षेत्र से**-सम्पूर्ण लोक प्रमाण
3. **काल से**-आदि अंत रहित
4. **भाव से**-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है।
5. **गुण से**-चलन गुण। पानी में मछली का दृष्टांत। जैसे-पानी के आधार से मछली चलती है, वैसे ही जीव और पुद्‌गल दोनों धर्मास्तिकाय के आधार से चलते हैं।

2. अधर्मास्तिकाय के 5 भेद-

अधर्मास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है-

1. **द्रव्य से**-एक द्रव्य
2. **क्षेत्र से**-सम्पूर्ण लोक प्रमाण
3. **काल से**-आदि अंत रहित
4. **भाव से**-वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और असंख्यात प्रदेशी है।
5. **गुण से**-स्थिरता गुण*। थके हुए पथिक को छाया का दृष्टांत अथवा उड़ते हुए विमान (Aeroplane) को पत्तन (Airport) का दृष्टांत। जैसे थके हुए पथिक को रुकने में छाया निमित्तभूत है अथवा उड़ते हुए विमान को रूकने में पत्तन निमित्तभूत है उसी तरह जीव और पुद्‌गल

* यद्यपि श्रीमद् स्थानांगसूत्र में अधर्मास्तिकाय का गुण 'स्थान गुण' बताया है किन्तु स्थान गुण का कथन करने से संस्कृत, प्राकृत भाषा के अपरिचित व्यक्तियों को स्थान गुण का तात्पर्य स्थान देने का गुण प्रतीत होने लगा, अत: यहाँ स्थान के पर्यायवाची स्थिरता शब्द से अधर्मास्तिकाय के गुण को व्यक्त किया गया है।

के ठहरने में अधर्मास्तिकाय निमित्तभूत है।

3. **आकाशास्तिकाय के 5 भेद-**

आकाशास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है।

1. **द्रव्य से**-एक द्रव्य
2. **क्षेत्र से**-लोकालोक प्रमाण।
3. **काल से**-आदि अंत रहित।
4. **भाव से**-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्वव्यापी और अनंत प्रदेशी है।
5. **गुण से** -अवगाहन गुण (स्थान देने का गुण)। भींत में खूँटी का दृष्टांत। जैसे- खूँटी को भींत स्थान देने में सहायक है वैसे ही धर्मास्तिकाय आदि पाँच द्रव्यों को आकाशास्तिकाय स्थान देने में सहायक है।

4. **काल के 5 भेद-**

काल द्रव्य को 5 बोलों से जाना जाता है।

1. **द्रव्य से**- अनन्त द्रव्यों पर प्रवर्ते
2. **क्षेत्र से**- अढ़ाई द्वीप प्रमाण।
3. **काल से**- आदि अंत रहित।
4. **भाव से**- वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत और अप्रदेशी है।
5. **गुण से**- वर्तन गुण। नये को पुराना और पुराने को नष्ट करे। कपड़े को कैंची का दृष्टांत। प्रदेश रहित होने से काल अस्तिकाय नहीं है।

5. **जीवास्तिकाय के 5 भेद-**

जीवास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है।

1. **द्रव्य से**- अनंत जीव द्रव्य
2. **क्षेत्र से**- सम्पूर्ण लोक प्रमाण
3. **काल से**- आदि अंत रहित
4. **भाव से**- वर्ण, गंध, रस और स्पर्श रहित, अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकव्यापी और अनन्त प्रदेशी है। एक आत्मा आश्रित शरीर व्यापी एवं असंख्यात प्रदेशी है।

5. **गुण से**- उपयोग गुण। 'चंद्र सूर्य की प्रभा का दृष्टांत'* जैसे-कितने ही बादलों द्वारा ढ़के जाने पर भी चंद्र सूर्य की प्रभा का कुछ न कुछ अंश रहता ही है। उसी प्रकार कितने ही कर्मों का आवरण आ जाने पर भी जीव में उपयोग का कुछ न कुछ अंश अनावृत्त रहता ही है।

6. पुद्गलास्तिकाय के 5 भेद-

पुद्गलास्तिकाय को 5 बोलों से जाना जाता है।

1. **द्रव्य से**- अनन्त द्रव्य।
2. **क्षेत्र से**- सम्पूर्ण लोक प्रमाण
3. **काल से**- आदि अंत रहित।
4. **भाव से**- रूपी अर्थात् वर्ण, गंध, रस और स्पर्श युक्त, अजीव, शाश्वत, लोकव्यापी और संख्यात-असंख्यात और अनंत प्रदेशी है।
5. **गुण से**- ग्रहण गुण*। बादल का दृष्टांत। बादल की तरह पुद्गल भी

---

* 'उपयोग गुण' के लिए पूर्व में 'चंद्रमा की कला का दृष्टांत' दिया जाता था वह सर्वथा घटित नहीं होता क्योंकि चन्द्रमा की कला तो अमावस्या को सर्वथा अदृष्ट हो जाती है किंतु किसी भी जीव का उपयोग सर्वथा नष्ट नहीं होता। साथ ही चन्द्रमा की कला हीयमान वर्धमान होती है किंतु उपयोग में सभी जीवों के हीयमान वर्धमान अवस्था होना जरूरी नहीं है। केवली आदि का उपयोग हीयमान वर्धमान नहीं होता। 'गुण गुणी में हमेशा पाया जाता है।' अत: हर जीव में उपयोग गुण न्यूनाधिक रूप में अवश्य पाया जायेगा। इसी बात को व्यक्त करते हुए 'श्रीमद् नंदीसूत्रकार' कहते हैं-

''सव्व जीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो णिच्चुग्घडिओ,
जइ पुण सोऽविआवरिज्जा तेणं जीवो अजीवन्तं पाविज्जा''

अर्थात् 'सभी जीवों का अक्षर (ज्ञान उपयोग) का अनंतवां भाग नित्य उद्घाटित रहता है, यदि वह भी आवृत्त हो जाये तो जीव अजीवत्व को प्राप्त कर लेता है।' आशय यह है कि जीव के अजीव नहीं होने का कारण ही उपयोग गुण है। उपयोग हर जीव में सदा ही पाया जाता है। उन्होंने उदाहरण देते हुए कहा- **'सुट्ठुवि मेहसमुदए, होइ पभा चंदसूराणं'**

अर्थात् कितने भी मेघ समुदाय (बादलों) के आने पर भी चन्द्र सूर्य की प्रभा रहती है। उसी प्रकार कितने ही कर्मों के आवरण आने पर भी उपयोग का कुछ न कुछ अंश अनावृत्त रहता ही है।

* श्रीमद् भगवती सूत्र (शतक 2 उद्देशक 10) तथा श्रीमद् स्थानांग सूत्र (स्थान 5 उद्देशक 3) में पुद्गलास्तिकाय का 'ग्रहण गुण' बताया है 'सड़न गलन विध्वंसन गुण' नहीं। 'सड़न-गलन-विध्वंसन' एक तरह का पर्याय परिवर्तन है जो कि सभी द्रव्यों में होता है इसलिए उसे केवल पुद्गल का गुण मानना युक्तियुक्त भी नहीं है एवं आगमोक्त भी नहीं है।

पुद्गल की परिभाषा करते हुए टीकाकार कहते हैं-'पूरणाद् गलनाद् च पुद्गल:' यहाँ पूरण और गलन का तात्पर्य क्रमश: जुड़ना व अलग होना है किंतु सड़ना गलना नहीं है। यहाँ ग्रहण का अर्थ 'संग्रह-विग्रह' से है यानि पुद्गलों के परस्पर मिलने व बिखरने से है।

पुद्गल के ग्रहण गुण का एक अर्थ है-पुद्गलों का ही जीवों द्वारा ग्रहण हो सकता है।

मिलते और बिखरते हैं।

प्र. द्रव्य किसे कहते हैं?

उ. भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल में रहने वाला गुण और पर्यायों का जो आधार होता है, उसे द्रव्य कहते हैं।

प्र. लोक किसे कहते हैं?

उ. जिसमें धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य हों उसे लोक कहते हैं।

प्र. अलोक किसे कहते हैं?

उ. जिसमें आकाश के सिवाय अन्य द्रव्य का अस्तित्त्व न हो उसे अलोक कहते हैं।

प्र. गुण किसे कहते हैं?

उ. जो द्रव्य के आश्रित हो, द्रव्य के सब अंशों में हर समय हो, उसे गुण कहते हैं।

प्र. जीवास्तिकाय किसे कहते हैं?

उ. लोक में रहे हुए समग्र जीवों (जीवों के आत्मप्रदेशों) के समूह को जीवास्तिकाय कहते हैं।

इक्कीसवें बोले राशि 2

1. जीव राशि, 2. अजीव राशि

जीव राशि के 563 भेद

नैरयिकों के 14 भेद

7 पृथ्वियों के अपर्याप्त व पर्याप्त नैरयिक कुल **14 भेद**

तिर्यञ्च के 48 भेद

एकेन्द्रिय के 22 -

पृथ्वीकाय	- सूक्ष्म अप.,	सूक्ष्म प.,	बादर अप.,	बादर प.	= 4
अप्काय	- सूक्ष्म अप.,	सूक्ष्म प.,	बादर अप.,	बादर प.	= 4
तेउकाय	- सूक्ष्म अप.,	सूक्ष्म प.,	बादर अप.,	बादर प.	= 4
वायुकाय	- सूक्ष्म अप.,	सूक्ष्म प.,	बादर अप.,	बादर प.	= 4

वनस्पतिकाय - सूक्ष्म निगोद, बादर निगोद, बादर प्रत्येक वनस्पति

इनके अपर्याप्त व पर्याप्त = 6

22

विकलेन्द्रिय के 6- बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त।

तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के 20

असन्नी ति. पंचेन्द्रिय	सन्नी ति. पंचेन्द्रिय
जलचर	जलचर
स्थलचर	स्थलचर
खेचर	खेचर
उरपरिसर्प	उरपरिसर्प
भुजपरिसर्प	भुजपरिसर्प

5 असन्नी ति. पंचें. व 5 सन्नी ति. पंचें. के अपर्या. पर्या. = 20

तिर्यञ्च के कुल भेद (22 + 6 + 20) =**48**

मनुष्य के 303 भेद

15 कर्मभूमिज मनुष्य - 5 भरत, 5 ऐरवत, 5 महाविदेह

30 अकर्मभूमिज मनुष्य - 5 देवकुरू, 5 उत्तरकुरू
- 5 हरिवर्ष, 5 रम्यक्वर्ष
- 5 हेमवत, 5 हेरण्यवत

56 अन्तर्द्वीपों के मनुष्य

इन 101 गर्भज मनुष्य के अपर्याप्त पर्याप्त = 202

इन 101 गर्भज मनुष्यों की अशुचि में उत्पन्न

सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त* मनुष्य = 101

कुल = **303**

नोटः **अप.- अपर्याप्त**
प.-पर्याप्त

*सम्मूर्च्छिम मनुष्य नियमा अपर्याप्त अवस्था में काल करते हैं अतः इनके पर्याप्त के भेद नहीं होते।

देवता के 198 भेद

भवनपति के 10 भेद - 1. असुरकुमार, 2. नागकुमार, 3. सुपर्णकुमार, 4. विद्युतकुमार, 5. अग्निकुमार, 6. द्वीपकुमार, 7. उदधिकुमार, 8. दिशाकुमार, 9. पवनकुमार., 10. स्तनितकुमार।

परमाधार्मिक देवों के 15 भेद- 1. अम्ब, 2. अम्बरीष, 3. श्याम, 4. शबल, 5. रौद्र, 6. महारौद्र, 7. काल, 8. महाकाल, 9. असिपत्र, 10. धनुष, 11. कुम्भ, 12. बालुका, 13. वैतरणी, 14. खरस्वर, 15. महाघोष।

वाणव्यन्तर के 26 भेद -

● **पिशाचादि 8** - 1. पिशाच, 2. भूत, 3. यक्ष, 4. राक्षस, 5. किन्नर, 6. किम्पुरुष, 7. महोरग, 8. गंधर्व।

● **आणपण्णे आदि 8** - 1. आणपण्णे, 2. पाणपण्णे, 3. इसिवाई, 4. भूयवाई, 5. कन्दे, 6. महाकन्दे, 7. कूह्मण्डे, 8. पयंगदेवे।

● **जृम्भक के 10** - 1. अन्न जृम्भक, 2. पान जृम्भक, 3. लयन जृम्भक, 4. शयन जृम्भक, 5. वस्त्र जृम्भक, 6. फल जृम्भक, 7. पुष्प जृम्भक, 8. फल पुष्प जृम्भक, 9. विद्या जृम्भक, 10. अव्यक्त (अधिपति) जृम्भक।

ज्योतिषी देवों के 10 भेद-

1. चन्द्र, 2. सूर्य, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र, 5. तारा। इनके चर (भ्रमणशील) व अचर (स्थिर) के भेद से 10 भेद हुए।

वैमानिक देवों के 38 भेद-

● **कल्पोपपन्न के 12 भेद** - 1. सौधर्म, 2. ईशान, 3. सनत्कुमार, 4. माहेन्द्र, 5. ब्रह्म, 6. लांतक, 7. महाशुक्र, 8. सहस्रार, 9. आणत, 10. प्राणत, 11. आरण और 12. अच्युत।

● **किल्विषिक देवों के 3 भेद**-

1. त्रैपल्योपमिक, 2. त्रैसागरिक, 3. त्रयोदश सागरिक।

● **लोकान्तिक देवों के 9 भेद** - 1. सारस्वत, 2. आदित्य, 3. वह्नि, 4. वरूण, 5. गर्दतोय, 6. तुषित, 7. अव्याबाध, 8. आग्नेय और 9. अरिष्ट।

कल्पातीत के दो भेद- ग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक।

● **ग्रैवेयक के 9 भेद**- 1. भद्र, 2. सुभद्र, 3. सुजात, 4. सुमनस,

5. सुदर्शन, 6. प्रियदर्शन, 7. आमोह, 8. सुप्रतिबद्ध और 9. यशोधर।

● **अनुत्तर विमान के 5 भेद**- 1. विजय, 2. वैजयन्त, 3. जयन्त, 4. अपराजित और 5. सर्वार्थसिद्ध।

इस प्रकार- 10+15+8+8+10+10+12+3+9+9+5=99

ये 99 अपर्याप्त व 99 पर्याप्त = **198 देव**

*अजीव राशि के दो भेद

अरूपी अजीव और रूपी अजीव।

1. अरूपी अजीव के 10 भेद- 1. धर्मास्तिकाय, 2. धर्मास्तिकाय का देश, 3. धर्मास्तिकाय के प्रदेश, 4. अधर्मास्तिकाय, 5. अधर्मास्तिकाय का देश, 6. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, 7. आकाशास्तिकाय, 8. आकाशास्तिकाय का देश, 9. आकाशास्तिकाय के प्रदेश और 10. काल।

2. रूपी अजीव के 2 भेद- सूक्ष्म परिणत एवं बादर परिणत।

1. **सूक्ष्म परिणत के अनेक भेद**-परमाणु, द्विप्रदेशी स्कंध, त्रिप्रदेशी स्कंध, चतुष्प्रदेशी स्कंध, पञ्चप्रदेशी स्कंध यावत् दसप्रदेशी स्कंध, संख्यात प्रदेशी स्कंध, असंख्यात प्रदेशी स्कंध, अनंत प्रदेशी स्कंध।

2. **बादर परिणत पुद्गल अनंत प्रदेशी ही होते हैं।**

● सूक्ष्म परिणत पुद्गलों के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की अपेक्षा कुल 25947 भंग हो सकते हैं तथा बादर परिणत पुद्गलों के कुल 233523 भंग हो सकते हैं।

● सूक्ष्म परिणत के 25947 भंग में से परमाणु में 200☆, द्विप्रदेशी

---

* अजीव राशि के 530 भेदों के स्थान पर इतने भंग करने का कारण इस प्रकार है- सिद्धांतानुसार किसी भी पुद्गल में वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श चारों का होना अवश्यंभावी है। इस दृष्टि से वर्णादि चारों के समावेश पूर्वक पुद्गलों के भंगों का कथन करना आगमानुकूल एवं उपयुक्त है।
पुद्गल के 530 भेद वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श इनमें से किन्हीं दो के सम्मिश्रण से बनते हैं। साथ ही उन 530 भेदों में कई भेदों की पुनरावृत्ति होती है। जैसे-काला सुरभिगंध का भेद, पुनः 'सुरभिगंध काला' यह भेद आदि, जिससे 530 की संख्या भी नहीं बन पाती। अतः 530 भेदों के स्थान पर वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श इन चारों के संयोग से बनने वाले भंग बताए गए हैं। यद्यपि श्रीमद् प्रज्ञापनासूत्र में एवं श्रीमद् उत्तराध्ययनसूत्र में वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श के साथ संस्थान का भी वर्णन है किंतु वह और भी ज्यादा विस्तृत होने से यहाँ श्रीमद् भगवतीसूत्र शतक 18 उद्देशक 6 के आधार से भंगों की संयोजना की गई है। परमाणु आदि के अलग-अलग भेद भी परिशिष्ट से जाने जा सकते हैं।

☆ निश्चय दृष्टि से परमाणु पुद्गल के 200, दो-प्रदेशी के 6075, तीन-प्रदेशी के 16875 एवं चार-प्रदेशी के 24300 भंग परिशिष्ट-1 पृष्ठ संख्या 93-97 पर देखें।

स्कंध में 6075, त्रिप्रदेशी स्कंध में 16875, चतुष्प्रदेशी स्कंध में 24300 तथा पञ्चप्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी में 25947 भंग पाते हैं।

● सूक्ष्म परिणत पुद्गलों में जघन्य 1 वर्ण उत्कृष्ट 5 वर्ण होते हैं।

● सूक्ष्म परिणत पुद्गलों में जघन्य 1 गंध उत्कृष्ट 2 गंध होती हैं।

● सूक्ष्म परिणत पुद्गलों में जघन्य 1 रस उत्कृष्ट 5 रस होते हैं।

● सूक्ष्म परिणत पुद्गलों में 'शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष' इन चार स्पर्शों में से जघन्य 2 उत्कृष्ट 4 स्पर्श होते हैं। यदि 2 स्पर्श होते हैं तो 2 अविरोधी* स्पर्श होते हैं।

वर्ण के प्रकार 31- असंयोगी 5+द्विसंयोगी 10+त्रिसंयोगी 10+चतुसंयोगी 5+पंच संयोगी 1=31

गंध के प्रकार 3 - 1. सुरभि 2. दुरभि 3. सुरभि-दुरभि = 3

रस के प्रकार 31 - असंयोगी 5+द्विसंयोगी 10+त्रिसंयोगी 10+चतुसंयोगी 5+पंच संयोगी 1 = 31

स्पर्श के प्रकार 9-द्विसंयोगी 4+त्रिसंयोगी 4+चतुसंयोगी 1= 9

इन्हें परस्पर गुणा करने से 25947 भंग बनते हैं।

31 (वर्ण) x 3 (गंध) x 31 (रस) x 9 (स्पर्श) = **25947** भंग हुए।

बाइसवें बोले श्रावकजी के 12 व्रत

1. **पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत** में श्रावकजी- त्रस जीवों को मारे नहीं, मरावे नहीं, मन, वचन और काया से। त्रस जीवों को मारने का त्याग करे, स्थावर की मर्यादा करे।
2. **दूसरे स्थूल मृषावाद विरमण व्रत** में श्रावकजी-मोटा (स्थूल) झूठ बोले नहीं, बोलावें नहीं, मन, वचन और काया से।
3. **तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत** में श्रावकजी- मोटी चोरी करे नहीं, करावे नहीं, मन, वचन और काया से।
4. **चौथे परदार-विवर्जन एवं स्वदार-संतोष रूप मैथुन विरमण व्रत** में

---

* अविरोधी स्पर्श- शीत और उष्ण आपस में विरोधी स्पर्श हैं इन दोनों में से एक स्पर्श ही पाया जाता है। इसी तरह स्निग्ध और रुक्ष में से एक स्पर्श ही पाया जाता है।

नोट : सूक्ष्म एवं बादर परिणत पुद्गलों के भंग परिशिष्ट-2 पृष्ठ संख्या 98-107 पर देखें।

श्रावकजी- परस्त्री सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री में मर्यादा करे।

5. **पाँचवें स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत** में श्रावकजी- परिग्रह की मर्यादा करे।
6. **छठे दिशा परिमाण व्रत** में श्रावकजी-छहों (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊँची-नीची) दिशाओं की मर्यादा करे।
7. **सातवें उपभोग, परिभोग परिमाण व्रत** में श्रावकजी-26 बोल की मर्यादा करें और पन्द्रह कर्मादान का त्याग करें।
8. **आठवें अनर्थदण्ड विरमण व्रत** में श्रावकजी- अनर्थदण्ड का त्याग करे।
9. **नौवें सामायिक व्रत** में श्रावकजी- प्रतिदिन शुद्ध सामायिक करे।
10. **दसवें देशावकाशिक व्रत** में श्रावकजी- देशावकाशिक पौषध करे। दया करे, संवर करे, चौदह नियम चितारें।
11. **ग्यारहवें पौषधोपवास व्रत** में श्रावकजी- प्रतिपूर्ण पौषध करे।
12. **बारहवें अतिथि संविभाग व्रत** में श्रावकजी- प्रतिदिन चौदह प्रकार की वस्तुओं में से जो निर्दोष हों, देवें।

तेइसवें बोले साधुजी के 5 महाव्रत

1. **अहिंसा महाव्रत**-पहले महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से जीव हिंसा करे नहीं, करावें नहीं और करते हुए को भला जाने नहीं, मन-वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।
2. **सत्य महाव्रत**-दूसरे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से झूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं, बोलते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।
3. **अचौर्य महाव्रत**-तीसरे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से चोरी करे नहीं, करावे नहीं, करते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।
4. **ब्रह्मचर्य महाव्रत**-चौथे महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवे नहीं, सेवावे नहीं, सेवते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।
5. **अपरिग्रह महाव्रत**-पाँचवें महाव्रत में साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से

परिग्रह रखे नहीं, रखावे नहीं, रखते हुए को भला जाने नहीं, मन, वचन और काया से (तीन करण, तीन योग से)।

प्र. व्रत और महाव्रत में क्या अंतर है?

उ. गृहस्थ जीवन की मर्यादा में रहकर अपनी शक्ति के अनुसार अहिंसादि बारह अणुव्रतों का पालन **'व्रत'** कहलाता है। घर-बार को छोड़कर सर्वथा निर्दोष रूप में अहिंसादि व्रतों का पूर्ण पालन करना **'महाव्रत'** कहलाता है। श्रावक अणुव्रती कहलाता है और पंच महाव्रतधारी साधु या साध्वी महाव्रती कहलाते हैं। संक्षेप में कहा जाय तो दोषों की पूर्ण निवृत्ति को 'महाव्रत' कहते हैं और आंशिक निवृत्ति को 'अणुव्रत' या 'देशविरति' कहते हैं।

चौबीसवें बोले प्रत्याख्यान के भंग 49

*नौ अंक 33, 32, 31, 23, 22, 21, 13, 12, 11 इसमें प्रथम अंक 'करण' और दूसरा अंक 'योग' रूप है।

33 अंक तैतीस का भंग उपजे एक।

तीन करण तीन योग से कहना।।

1. करुं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से, काया से।

32 अंक एक बत्तीस का भंग उपजे तीन।

तीन करण दो योग से कहना।।

1. करुं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से।
2. करुं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, काया से।
3. करुं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-वचन से, काया से।

31 अंक एक इकतीस का भंग उपजे तीन।

तीन करण एक योग से कहना।।

1. करुं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से।
2. करुं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-वचन से।
3. करुं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-काया से।

23 अंक एक तेईस का भंग उपजे तीन।

दो करण तीन योग से कहना।।

1. करुं नहीं, कराऊं नहीं-मन से, वचन से, काया से।

★ भंग क्रम का बदलाव श्री भगवतीसूत्र शतक 8 उद्देशक 5 के आधार से किया गया है।

2. करुं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से, काया से।

3. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से, काया से।

22 अंक एक बाईस का भंग उपजे नौ।

दो करण, दो योग से कहना॥

1. करूं नहीं, कराऊं नहीं-मन से, वचन से।
2. करूं नहीं, कराऊं नहीं-मन से, काया से।
3. करूं नहीं, कराऊं नहीं-वचन से, काया से।
4. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से।
5. करुं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, काया से।
6. करुं नहीं, अनुमोदूं नहीं-वचन से, काया से।
7. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से।
8. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से, काया से।
9. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-वचन से, काया से।

21 अंक एक इक्कीस का भंग उपजे नौ।

दो करण एक योग से कहना॥

1. करूं नहीं, कराऊं नहीं-मन से।
2. करूं नहीं, कराऊं नहीं-वचन से।
3. करूं नहीं, कराऊं नहीं-काया से।
4. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से।
5. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं-वचन से।
6. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं-काया से।
7. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-मन से।
8. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-वचन से।
9. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं-काया से।

13 अंक एक तेरह का भंग उपजे तीन।

एक करण तीन योग से कहना॥

1. करूं नहीं-मन से, वचन से काया से। 2. कराऊं नहीं-मन से, वचन से, काया से। 3. अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से, काया से।

12 अंक एक बारह का भंग उपजे नौ।

एक करण दो योग से कहना॥

1. करूं नहीं-मन से, वचन से। 2. करूं नहीं-मन से, काया से। 3.करूं नहीं-वचन से, काया से। 4. कराऊं नहीं-मन से, वचन से। 5. कराऊं नहीं-मन से, काया से। 6. कराऊं नहीं-वचन से, काया से।

7. अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से। 8. अनुमोदूं नहीं-मन से, काया से।

9. अनुमोदूं नहीं-वचन से, काया से।

11 अंक एक ग्यारह का भंग उपजे नौ।

एक करण एक योग से कहना।।

1. करूं नहीं मन से, 2. करूं नहीं वचन से, 3. करूं नहीं काया से, 4. कराऊं नहीं मन से। 5. कराऊं नहीं वचन से 6. कराऊं नहीं काया से, 7. अनुमोदूं नहीं मन से, 8. अनुमोदूं नहीं वचन से, 9. अनुमोदूं नहीं काया से।

यंत्र

अंक	33	32	31	23	22	21	13	12	11
करण	3	3	3	2	2	2	1	1	1
योग	3	2	1	3	2	1	3	2	1
भंग	1	3	3	3	9	9	3	9	9

भंग-49

प्र. भंग किसे कहते हैं?

उ. किसी विषय में बनने वाले अनेक विकल्पों को **'भंग'** कहते हैं। ये 49 भंग श्रावक के प्रत्याख्यान संबंधी समझने चाहिए।

पच्चीसवें बोले चारित्र 5

1. सामायिक चारित्र 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र 3. परिहार विशुद्धि चारित्र 4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र, 5. यथाख्यात चारित्र।

प्र. चारित्र किसे कहते हैं?

उ. सर्व सावद्य योग से निवृत्ति को **'चारित्र'** कहते हैं।

-----●-----

12 चक्रवर्ती

चक्रवर्ती उन्हें कहते हैं जो सम्पूर्ण छः खण्ड पृथ्वी को जीतकर राज्य करे और चौदह रत्न तथा नवनिधि के स्वामी हों। उनके नाम इस प्रकार हैं-

1. भरतजी	2. सगरजी	3. मघवाजी
4. सनत्कुमारजी	5. शांतिनाथजी	6. कुन्थुनाथजी
7. अरनाथजी	8. सुभूमजी	9. महापद्मजी
10. हरिषेणजी	11. जयसेनजी	12. ब्रह्मदत्तजी

पांचवें, छठे और सातवें चक्रवर्ती ही सोलहवें, सतरहवें और अट्ठारहवें तीर्थंकर हुए हैं।

नव बलदेव, नव वासुदेव और नव प्रतिवासुदेव

बलदेव एवं वासुदेव दोनों भाई होते हैं। वासुदेव, प्रतिवासुदेव को मारकर तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी बनते हैं। वासुदेव की मृत्यु के बाद बलदेव भी मुनि बन जाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं-

9 बलदेव के नाम

1. अचलजी	2. विजयजी	3. भद्रजी
4. सुप्रभजी	5. सुदर्शनजी	6. आनन्दजी
7. नन्दनजी	8. रामचन्द्रजी	9. बलभद्रजी

9 वासुदेव के नाम

1. त्रिपृष्टजी	2. द्विपृष्टजी	3. स्वयंभूजी
4. पुरुषोत्तमजी	5. पुरुषसिंहजी	6. पुरुषपुण्डरीकजी
7. दत्तजी	8. लक्ष्मणजी	9. कृष्णजी

9 प्रतिवासुदेव के नाम

1. अश्वग्रीवजी	2. तारकजी	3. मेरकजी
4. मधुकीटजी	5. निष्कुंभजी	6. बलिजी
7. प्रहलादजी	8. रावणजी	9. जरासंधजी

-----●-----

छः काय का थोकड़ा

श्री पन्नवणा सूत्र के छठे पद के आधार से छः काय का थोकड़ा चलता है जिसके आठ द्वार हैं :- 1. नाम द्वार, 2. गोत्र द्वार 3. वर्ण द्वार, 4. स्वभाव द्वार, 5. संठाण द्वार, 6. कुल कोड़ी द्वार, 7. जन्म-मरण द्वार, 8. अल्प बहुत्व द्वार।

नाम द्वार

1. इन्द्र स्थावरकाय 2. ब्रह्म स्थावरकाय
3. शिल्प स्थावरकाय 4. सम्मति स्थावरकाय
5. प्राजापत्य स्थावरकाय 6. जंगम काय

गोत्र द्वार

1. पृथ्वीकाय 2. अप्काय 3. तेउकाय
4. वायुकाय 5. वनस्पतिकाय 6. त्रसकाय

वर्ण द्वार

1. पृथ्वीकाय का वर्ण पीला 2. अप्काय का लाल
3. तेउकाय का सफेद 4. वायुकाय का नीला
5. वनस्पतिकाय का काला 6. त्रसकाय का नाना प्रकार का।

स्वभाव द्वार

1. पृथ्वीकाय का स्वभाव कठोर 2. अप्काय का स्वभाव ढीला
3. तेउकाय का स्वभाव उष्ण 4. वायु काय का स्वभाव वाजना
5-6 वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय का स्वभाव अनेक प्रकार का।

संठाण द्वार

1. पृथ्वीकाय का संठाण चन्द्र, मसूर के समान।
2. अप्काय का संठाण पानी के बुलबुले के समान।
3. तेउकाय का संठाण सुई के भारे के समान।
4. वायुकाय का संठाण धवजा-पताका के समान।

5-6. वनस्पतिकाय व त्रसकाय का संठाण अनेक प्रकार का।

कुल कोड़ी द्वार

कुल कोड़ी-जीवों के अनेक प्रकार

पृथ्वीकाय की 12 लाख, अप्काय की 7 लाख, तेउकाय की 3 लाख, वायुकाय की 7 लाख, वनस्पतिकाय की 28 लाख, बेइन्द्रिय की 7 लाख, तेइन्द्रिय की 8 लाख, चउरिन्द्रिय की 9 लाख, जलचर की 12½ लाख, थलचर की 10 लाख, खेचर की 12 लाख, उरपरिसर्प की 10 लाख, भुजपरिसर्प की 9 लाख, नैरयिक की 25 लाख, देवता की 26 लाख, मनुष्यों की 12 लाख, कुल कोड़ी एक करोड़ साढ़े सत्तानवे लाख।

जन्म-मरण द्वार

भंते! चार स्थावर के जीव एक मुहूर्त में कितने जन्म-मरण करते हैं?

जघन्य एक उत्कृष्ट 12,824 बार जन्म मरण करते हैं।

वनस्पति के तीन भेद- 1. सूक्ष्म, 2. साधारण 3. प्रत्येक

इन सबके जन्म-मरण जघन्य 1, उत्कृष्ट सूक्ष्म वनस्पति के 65,536, साधारण वनस्पति के 32,000, प्रत्येक वनस्पति के जीव 16,000 जन्म मरण करे, बेइन्द्रिय के 80, तेइन्द्रिय के 60, चउरिन्द्रिय के 40, असन्नी पंचेन्द्रिय के 24, सन्नी पंचेन्द्रिय जघन्य उत्कृष्ट एक।

अल्प-बहुत्व द्वार

सबसे कम त्रसकाय,
इससे तेउकाय असंख्यात गुणा,
इससे पृथ्वीकाय विशेषाधिक,
इससे अप्काय विशेषाधिक,
इससे वायुकाय विशेषाधिक,
इससे सिद्ध भगवन अनन्त गुणा,
इससे वनस्पति काय अनंतगुणा।

छः काय परिशिष्ट

1. **पृथ्वीकाय**- एक चने जितनी मिट्‌टी में भगवान ने असंख्यात जीव बताए हैं। वे सभी जीव निकल कर कबूतर जितना शरीर बनावें, तो एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप में नहीं समाए।

2. **अप्काय**- पानी की एक बूंद में भगवान ने असंख्य जीव बताए हैं। वो सभी जीव वहां से मरकर भ्रमर जितना शरीर बनाएं तो एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप में नहीं समाए।

3. **तेउकाय**- एक अग्नि की चिंगारी में भगवान ने असंख्य जीव बताए हैं। वे सभी जीव मरकर सरसों जितना शरीर बनाएं तो एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप में नहीं समाए।

4. **वायुकाय**- चुटकी बजाने से, खुले मुंह बोलने से, पंखा चलाने से, कपड़ा झटकने से, ताली बजाने से आदि क्रियाओं में कृत्रिम अचित्त वायु उत्पन्न होती है। इससे प्राकृतिक सचित्त वायुकाय के जीवों की हिंसा होती है। एक चुटकी वायु में भगवान ने असंख्य जीव बताए हैं। वे सभी जीव निकलकर, खसखस (पोस्तदाना) जितना शरीर बनाए तो एक लाख योजन के इस जम्बूद्वीप में नहीं समाए।

5. **वनस्पतिकाय**- जमीकन्द (आलु, प्याज) आदि वनस्पति का टुकड़ा, जो मात्रा में सुई की नोंक पर ठहर सके, उसमें असंख्यात प्रतर है। एक-एक प्रतर में असंख्य श्रेणियां हैं, एक-एक श्रेणी में असंख्य गोले हैं, एक-एक गोले में असंख्य शरीर हैं तथा एक शरीर में अनंत जीव हैं।

भव्यात्माओं! प्रभु ने वनस्पति की योनि 24 लाख प्रकार की बताई है। सभी वनस्पतियों का हम त्याग नहीं कर सकते फिर भी यदि 100-200 आदि प्रमाण में खुली रखकर बाकी वनस्पति के त्याग करते हैं तो भी लाखों प्रकार की वनस्पति के अनंत जीवों की दया पालकर हम अपनी तरफ से उन्हें अभयदान दे सकते हैं। अत: आप वनस्पति की मर्यादा (सौगन्ध) करें व अन्य जीवों को भी इस त्याग की प्रेरणा दें।

6. **त्रसकाय**- त्रसकाय में सभी चलते फिरते जीव हैं। ये कुल असंख्यात् होते हैं।

ऐसा जानकर जो भवि आत्मा उपर्युक्त छ:काय की जीवदया पालेगा, उसका परम कल्याण होगा।

-----●-----

कथा विभाग

1. भगवान पार्श्वनाथ

जन्म- इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में गंगा महानदी के निकट वाराणसी नामक भव्य नगरी थी। वहाँ इक्ष्वाकु वंशीय महाराजा अश्वसेन का राज्य था। वे महाप्रतापी सौभाग्यशाली और धर्मपरायण थे। वामादेवी उनकी पटरानी थी। वह सुन्दर, सुशील और उत्तम गुणों की स्वामिनी थी। पति की वह प्राणवल्लभा थी। नम्रता, सौजन्यता और पवित्रता की वह प्रतिमा थी। सुवर्णबाहु का जीव प्राणत स्वर्ग से च्यव कर चैत्र-कृष्णा-चौथ की अर्द्धरात्रि को विशाखा-नक्षत्र में महारानी वामादेवी की कुक्षी में उत्पन्न हुआ। रानी वामादेवी ने तीर्थंकर के जन्म के सूचक चौदह महास्वप्न देखे। महाराजा व महारानी के हर्ष का पार नहीं रहा। स्वप्न पाठकों से स्वप्न फल पूछा। तीर्थंकर जैसे त्रिलोकपूज्य होने वाले महान् आत्मा के आगमन की प्रतीति से वे परम प्रसन्न हुए। पौष कृष्णा दसमी की रात्रि को विशाखा नक्षत्र में पुत्र का जन्म हुआ। नीलोत्पल वर्ण और सर्प के चिह्न वाला वह पुत्र अत्यन्त शोभनीय था। छप्पन दिशाकुमारियों ने सुतिका कर्म किया। देव-देवियों और इन्द्र-इन्द्राणियों ने जन्मोत्सव मनाया। महाराज अश्वसेनजी ने भी बड़े हर्ष के साथ पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जब पुत्र गर्भ में था, तब रात के अंधकार में महारानी ने पति के पार्श्व (बगल में) में होकर जाते हुए एक सर्प को देखा था। इस स्वप्न को गर्भ का प्रभाव मान कर माता-पिता ने पुत्र का पार्श्व नाम दिया। कुमार दूज के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे। यौवनवय प्राप्त होने पर वे भव्य अति आकर्षक और नौ हाथ प्रमाण ऊँचे थे। उनके अलौकिक रूप को देखकर स्त्रियाँ सोचतीं- वह स्त्री परम सौभाग्यवती होगी जिसके पति ये राजकुमार होंगे।

अद्‌भुत पराक्रम एवं विवाह- कन्नौज (कुशस्थल) नामक नगर में नरवर्मा नामक राजा राज्य करते थे। उनका धर्म के प्रति अनन्य अनुराग था। उन्होंने अपने प्रतापी पुत्र प्रसेनजित को राज्यभार सौंप कर निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या अंगीकार कर ली। राजा प्रसेनजित की प्रभावती नाम की पुत्री थी। वह रूप एवं लावण्य में देवांगना से भी अधिक सुन्दर थी। उसके रूप पर अनेक राजा एवं राजकुमार आसक्त थे। राजकुमारी प्रभावती ने किन्नरियों द्वारा

पार्श्वकुमार के गुण, रूप, सौन्दर्य एवं बल पराक्रम का वृत्तान्त सुना तभी से वह पार्श्वकुमार के प्रति अनुरक्त रहने लगी। कलिंग आदि देशों का अधिपति दुर्दान्त यवनराज ने राजा प्रसेनजित से प्रभावती की मांग की किन्तु माता-पिता ने पुत्री की भावना का आदर करते हुए, यवनराज की मांग को ठुकरा दिया जिससे क्रोधित होकर उसने कलिंग राज्य को घेर लिया तथा धमकी दी कि 'युद्ध करो या प्रभावती को मुझे दो।' इन परिस्थितियों में राजा प्रसेनजित ने एक दूत राजा अश्वसेन के पास भेजा। दूत ने आद्योपांत वृतान्त सुनाते हुए सहायता की मांग की। राजा अश्वसेन बोले- इस दुष्ट यवनराज का इतना दु:साहस! राजा प्रसेनजित को किसी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिये। मैं स्वयं दुष्ट यवन से कुशस्थल नगर की रक्षा करुँगा। महाराज के आदेश में रणभेरी बजी, सेना एकत्र होने लगी। पार्श्वकुमार रणघोष सुनकर तत्काल राज्यसभा में उपस्थित हुए तथा शीघ्रतापूर्वक घटनाक्रम जान लिया एवं पिताजी से निवेदन कर यवनराज को हराने रणभूमि में जाने की आज्ञा प्राप्त की। युवराज ने शुभ मुहूर्त में गजारूढ़ होकर कुशस्थल की ओर प्रस्थान किया। देवाधिपति शकेन्द्र ने तीर्थंकर के युद्धार्थ प्रयाण को जानकर उनके लिये अपने सारथी को दिव्य अस्त्रों तथा रथ के साथ प्रभु की सेवा में भेजा। पार्श्वकुमार हाथी से उतरकर दिव्यरथ पर आरूढ़ हुये तथा कुशस्थल के निकट उद्यान में देव निर्मित महल में ठहरे। यवनराज को दूत भेजकर सन्देश दिया-महाराजा अश्वसेन के पुत्र पार्श्वकुमार ने कुशस्थल से आक्रमण हटाने के लिये सूचित किया है। यवनराज तुम्हारा हित इसी में है कि तुम युद्ध का दु:साहस मत करो।

राजदूत का सन्देश सुनकर यवनराज क्रोधित होते हुए बोला-मैं पार्श्वकुमार से डरने वाला नहीं, अगर पिता-पुत्र दोनों अपने समस्त साथियों को लेकर आ जाएं तो भी मुझसे नहीं जीत सकते। तुम्हारे राजकुमार से जाकर कह दो अगर जीवित रहना चाहते हैं तो शीघ्र यहाँ से प्रस्थान कर जाएं।

यवनराज के धृष्टता पूर्ण शब्द राजदूत सहन नहीं कर सका और क्रोधित स्वर में बोला- हे यवनराज, तू मेरे स्वामी को नहीं जानता। वे अनन्त बली हैं, वे देवेन्द्र के लिए भी पूज्य हैं। उनके सामने संसार की कोई भी शक्ति नहीं ठहर सकती। देवेन्द्र ने अपना रथिक शस्त्र और रथ भेजे हैं। उनकी आप पर कृपा है जो आपको जीवित रहने का सुयोग प्रदान कर रहे हैं।

दूत के वचन को सुनकर यवन सैनिक भड़क उठे और शस्त्र उठाकर राजदूत पर आक्रमण करने हेतु आगे बढ़े। तभी यवनराज का एक वृद्ध मंत्री उठा और उन सभी को शान्त किया तथा राजदूत से क्षमायाचना तथा संतुष्ट कर विदा किया। इसके बाद वृद्ध मंत्री ने यवनराज के सम्मुख पार्श्वकुमार की महानता का उल्लेख किया तथा तीर्थंकर होने का ज्ञान कराया। यवनराज वृद्ध मंत्री की सलाह को मानकर मंत्रियों और अधिकारियों सहित पार्श्वकुमार के स्कन्धावार में पहुँचा। कुमार का दिव्य रथ, महासेना, पार्श्वकुमार का लौकिक प्रभा युक्त भव्य स्वरूप देखकर विस्मित हो गया और सहज ही उसने युवराज को प्रणाम किया। यवनराज ने विनम्रता पूर्वक अपने अपराध के लिए पार्श्वकुमार से क्षमा मांगी और अलौकिक दर्शन कर कृतार्थ हो गया और अपना राज्य समर्पित कर दिया। पार्श्वकुमार ने यवनराज को उचित नीति शिक्षा देकर आत्म-कल्याण का संदेश दिया।

प्रसेनजित नरेश पार्श्वकुमार के आगमन एवं विपत्ति टलने से परम प्रसन्न हुए। नरेश सपरिवार राजकुमारी प्रभावती एवं अधिकारी सहित राजकुमार का अभिनन्दन करने तथा पुत्री को अर्पण करने आए। किन्तु पार्श्वकुमार धीर गंभीर वाणी में बोले - राजन् मैं पिताश्री की आज्ञा से केवल आपकी सहायता के लिए आया हूँ, विवाह करने नहीं। अतएव आप यह आग्रह नहीं करें। तब राजा प्रसेनजित अपनी पुत्री, परिजन सहित पार्श्वकुमार के साथ वाराणसी पहुँचे। विजयी युवराज का जनता ने भव्य स्वागत किया। प्रसेनजित ने अत्यन्त आभार मानते हुए महाराजा अश्वसेन को अपना प्रयोजन निवेदन किया।

कुमार माता-पिता तथा प्रसेनजित राजा का आग्रह टाल नहीं सके। कुछ भोग्य कर्म भी शेष थे। उन्होने प्रभावती के साथ विवाह किया तथा अनासक्त जीवन व्यतीत करने लगे।

कमठ से वाद और नाग का उद्धार- एक दिन पार्श्वकुमार भवन के झरोखे से नगर की शोभा देख रहे थे। उन्होंने देखा नर-नारियों के झुण्ड हाथों में पत्र-पुष्प-फलादि युक्त चंगेरी लेकर नगर के बाहर जा रहे हैं, उन्होंने सेवक से पूछा, क्या कोई उत्सव का दिन है जो नागरिकजन नगरी के बाहर जा रहे हैं? सेवक ने कहा- 'कमठ' नाम के तपस्वी आये हुए हैं। वे पंचाग्नि तप करते हैं। नागरिकजन उन महात्मा की पूजा-वन्दना करने जा रहे हैं।

राजकुमार भी सपरिवार तापस को देखने चले। उन्होंने देखा तापस अपने चारों ओर अग्नि-कुण्ड प्रज्वलित करके तप रहा है और ऊपर से सूर्य के ताप को भी सहन कर रहा है। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से तापस की क्रिया और उससे होने वाले अनर्थ का अवलोकन किया। उन्होंने जाना कि अग्नि कुण्ड में जल रहे काष्ठ के मध्य एक नाग युगल झुलस रहा है। भगवान के मन में दया का वेग उमड़ आया। उन्होंने कहा- अहो! कितना अज्ञान है? वह धर्म ही क्या और वह तप ही किस काम का जिसमें दया का स्थान ही नहीं रहे। जिस तप में दया का स्थान नहीं, वह तप सम्यग् तप नहीं हो सकता। हिंसा युक्त क्रिया से साधक का आत्महित नहीं हो सकता। दया रहित धर्म व्यर्थ है। पशु के समान अज्ञान कष्ट सहने से काया को क्लेश हो सकता है। ऐसा काय क्लेश कितना ही सहन किया जाए परन्तु जब तक वास्तविक धर्मतत्त्व को हृदय में स्थान नहीं मिलता, तब तक ऐसे निर्दय अनुष्ठान से आत्महित नहीं हो सकता।

राजकुमार तुम्हारा काम क्रीड़ा करने का है। हाथी-घोड़े पर सवार होकर मनोविनोद करना तुम जानते हो। धर्म का ज्ञान तुम्हें नहीं हो सकता। धर्मतत्त्व को समझने, समझाने का काम हम धर्मगुरुओं का है, तुम्हारा नहीं। हमारे काम में हस्तक्षेप मत करो। यदि तुम्हें मेरी तपस्या में कोई पाप या हिंसा दिखाई देती हो तो बताओ, अन्यथा अपने रास्ते लगो- अपने अधिकार एवं प्रभाव में अचानक विघ्न उत्पन्न हुआ देखकर तपस्वी बोला।

कुमार ने अनुचर को आदेश दिया- इस अग्निकुण्ड का वह काठ बाहर निकालो और उसे सावधानी से चीरो। सेवक ने तत्काल आज्ञा का पालन किया। काठ को चीरते ही उसमें से जलता हुआ एक नाग युगल निकला। पीड़ा से तड़फते हुए नाग को नमस्कार मंत्र सुनाया और पाप का प्रत्याख्यान करवाया। प्रभु के प्रभाव से नमस्कार मंत्र सुनते ही नाग की आत्मा में समाधिभाव उत्पन्न हुआ। वह आर्त्त-रौद्र ध्यान से बच गया और धर्म ध्यान युक्त आयुष्य पूर्ण करके भवनपति के नागकुमार जाति के इन्द्र 'धरणेन्द्र' पने उत्पन्न हुआ।

जलते हुए काठ में से सर्प निकले और उसे धर्म का अवलंबन देते देखकर उपस्थित जनता की श्रद्धा तापस से हट गई और जनता अपने प्रिय राजकुमार की जय-जयकार करने लगी। पार्श्वकुमार वहाँ से लौटकर स्वस्थान

आए।

तपस्वीराज कमठजी का मान भंग हो गया। वह आवेश में आकर अति उग्र तप करने लगा। वह मिथ्यात्व युक्त तप करता हुआ मरकर भवनवासी देवों की मेघ कुमार निकाय में 'मेघमाली' नाम का देव हुआ।

पार्श्वनाथ का संसार त्याग- भाग्योदय से कर्मफल क्षीण होने पर श्री पार्श्वनाथजी के मन में संसार के प्रति विरक्ति अधिक बढ़ी। भगवान ने वर्षीदान दिया। तत्पश्चात् लोकान्तिक देवों ने अपने आचार के अनुसार भगवान के निकट आकर प्रार्थना की-

"भगवन्! धर्म-तीर्थ प्रवर्तन करें। भव्य जीवों का संसार से उद्धार करने का समय आ रहा है। अब प्रव्रजित होने की तैयारी करें प्रभु!"

लोकान्तिक देव अपने आचार के अनुसार भगवान से निवेदन करके लौट गये। पौष-कृष्णा एकादशी के दिन विशाखा नक्षत्र में तेले के तप से, तीन सौ पुरुषों के साथ प्रभु ने देवेन्द्रों, नरेन्द्रों और विशाल देव-देवियों और नर-नारियों की उपस्थिति में निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या स्वीकार की। प्रव्रजित होते ही भगवान को मन:पर्यायज्ञान उत्पन्न हो गया। दीक्षा ग्रहण करने के दूसरे दिन आश्रमपद उद्यान से विहार करके भगवान कोपकटक नामक गांव में पधारे और धन्य नामक गृहस्थ के यहाँ परमान्न से तेले का पारणा किया। देवों ने वहाँ पंचदिव्य की वर्षा की और धन्य-धन्य कह कर दान की महिमा की। भगवान वहाँ से विहार कर गए।

कमठ के जीव मेघमाली का घोर उपसर्ग

भगवान साधनाकाल में विचरते हुए एक वन में पधारे और किसी तापस के आश्रम के निकट एक कुएँ पर वट वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े रहे। उस समय कमठ तापस के जीव मेघमाली देव ने अपने पूर्वभव के शत्रु पार्श्वकुमार को ध्यानस्थ देखा। वह क्रुद्ध हो गया। पूर्वभवों की वैर-परम्परा पुन: भड़की। वह निर्ग्रन्थ महात्मा के लिए उपद्रव करने पर तत्पर हुआ और भगवान के समीप आया। सर्वप्रथम उसने विकराल केसरी-सिंहों की विकुर्वणा की जो अपनी भयंकर गर्जना, पूँछ से भूमिस्फोट और रक्तनेत्रों से चिनगारियाँ छोड़ते हुए चारों ओर से एक साथ टूट पड़ते हुए दिखाई दिए परन्तु प्रभु तो अपनी ध्यान अवस्था में अडिग, पूर्णतया शान्त और निर्भीक रहे। मेघमाली की यह माया व्यर्थ गई। सिंहों का वह समूह पलायन कर गया।

अपना प्रथम वार व्यर्थ होने के बाद मेघमाली ने दूसरा वार किया। उसने मदोन्मत्त गजसेना बनाई, जो सूँड उठाए चिंघाड़ती हुई चारों ओर से प्रभु पर आक्रमण करने के लिए आ रही थी। परन्तु प्रभु तो पर्वत के समान अडोल शान्त और निर्विकार खड़े रहे। वह गजसेना भी निष्फलता लिये हुए अन्तर्ध्यान हो गई। इसके बाद तीसरा आक्रमण भालुओं का झुण्ड बनाकर किया गया। चौथा भयंकर चीतों के झुण्ड से, पाँचवाँ बिच्छुओं से, छठा भयंकर सर्पों से और सातवाँ विकराल बेतालों के भयंकर रूपों द्वारा उपद्रव करवाया परन्तु वे सभी उपद्रव निष्फल रहे। प्रभु का अटूट धैर्य एवं शान्त समाधि वे नहीं तोड़ सके।

अपने सभी प्रहार निष्फल होते देखकर वह मेघमाली देव बहुत क्रोधित हुआ। अब वह महाप्रलयकारी घनघोर वर्षा करने लगा। भयंकर मेघगर्जना, कड़कती हुई बिजलियाँ और मूसलाधार वर्षा से सभी दिशाएँ व्याप्त हो गईं। घोर अन्धकार व्याप्त हो गया। तीक्ष्ण भाला बरछी और कुदाल जैसा दुःखदायक असह्य प्रहार उस मेघ की धाराओं का था। इस प्राणहारक वर्षा से पशु-पक्षी घायल होकर गिरने लगे। सिंह-व्याघ्र, महिष और हाथी जैसे बलवान पशु भी उस जल धारा के प्रहार को सहन नहीं कर सके और इधर-उधर भाग-दौड़ कर अपना बचाव करने की निष्फल चेष्टा करने लगे। पशु-पक्षी उस जल प्रवाह में बहने लगे। उनकी अर्राहट एवं चीत्कार से सारे वातावरण में विभीषिका छा गई। वृक्ष उखड़ कर गिरने लगे।

धरणेन्द्र का आगमन : उपद्रव मिटा- भगवान पार्श्वनाथ तो सर्वथा निर्भीक, अडिग और शान्त ध्यानस्थ खड़े थे। अंशमात्र भी भय, क्षोभ या चंचलता नहीं। भूमि पर पानी बढ़ते हुए भगवान के घुटने तक आया, कुछ देर बाद जांघ तक, फिर कमर, छाती और गले तथा और बढ़ते-बढ़ते नासिका के अग्रभाग तक पहुँच गया। किन्तु प्रभु की अडिगता, दृढ़ता एवं ध्यान में कोई कमी नहीं हुई। प्रभु पर हुए इस भयंकर उपसर्ग से धरणेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। उसने अपने अवधिज्ञान से यह दृश्य देखा। उसे कमठ तापस वाली सारी घटना, अपना सर्प का भव और प्रभु का उपकार स्मरण हो आया। वह अपने उपकारी की पापी मेघमाली के उपद्रव से रक्षा करने के लिये, अपनी देवांगनाओं के साथ भगवान के निकट आया। इन्द्र ने भगवान को नमस्कार किया और वैक्रिय से एक लम्बी नाल वाले कमल की

रचना करके प्रभु के चरणों के नीचे कमल रख कर ऊपर उठा लिया। फिर अपने सप्त फण से प्रभु के शरीर को छत्र के समान आच्छादित कर दिया। धरणेन्द्र ने भगवान को इस घोर परीषह से मुक्त किया। धरणेन्द्र प्रभु का भक्त-सेवक था और मेघमाली घोर शत्रु था परन्तु भगवान के मन में तो दोनों समान थे। न धरणेन्द्र पर राग हुआ और न मेघमाली पर द्वेष।

जब मेघमाली का उपद्रव नहीं रूका, तो धरणेन्द्र ने चुनौतीपूर्वक ललकारते हुए कहा :-

''अरे अधम! तुझे कुछ भान भी है? ओ अज्ञानी! इस घोर पाप से तू अपना ही विनाश कर रहा है। तेरी बुद्धि इतनी कुटिल क्यों हो गई है? इन विश्वपूज्य महात्मा का अहित करके तू किस सुख की चाहना कर रहा है? मैं इन महान् दयालु भगवान का शिष्य हूँ। अब मैं तेरी अधमता सहन नहीं कर सकूँगा। मैं समझ गया। तू इन महात्मा से अपने पूर्वभव का वैर ले रहा है। अरे मूर्ख! इन्होंने तो अनुकम्पा वश होकर सर्प को (मुझे) बचाया था और तेरा अज्ञान दूर करके सन्मार्ग पर लाने के लिये हितोपदेश दिया था, परन्तु तु कुपात्र था। तेरी कषायाग्नि भभकी और अब क्रूर बन कर तू उपद्रव कर रहा है। हे मेघमाली! रोक अपनी क्रूरता को, अन्यथा अपनी अधमता का फल भोगने के लिए तैयार हो जा।''

धरणेन्द्र की गर्जना सुनकर मेघमाली ने नीचे देखा, नागेन्द्र को देखते ही उसे आश्चर्य के साथ भय हुआ। उसने देखा कि जिस संत को मैं अपना शत्रु समझकर उपद्रव कर रहा हूँ, उस महात्मा की सेवा में धरणेन्द्र स्वयं उपस्थित हैं। मेरी शक्ति ही कितनी है, जो मैं धरणेन्द्र की अवज्ञा करूँ और यह महात्मा कोई साधारण मनुष्य नहीं है। साधारण मनुष्य की सेवा में धरणेन्द्र नहीं आते। ये महात्मा किसी महाशक्ति के धारक अलौकिक विभूति हैं। मेरे द्वारा किये हुए भयानकतम उपद्रवों ने इन महापुरुष को किंचित भी विचलित नहीं किया। यह महात्मा तो अनन्त शक्ति के भण्डार लगते हैं। यदि क्रूर होकर इन्होंने मेरी ओर देख भी लिया होता तो मेरा अस्तित्त्व ही नहीं रहता।

''हाँ, मैं अज्ञानी ही हूँ, मैंने महापाप किया है, मैं इस परम पूज्य महात्मा की शरण में जाऊँ और क्षमा माँगू, इसी में मेरा हित है।''

अपनी माया को समेटकर वह प्रभु के समीप आया और नमस्कार

करके बोला– ''भगवन्! मैं पापी हूँ। मैंने आपकी हित शिक्षा को नहीं समझा। मुझ पापात्मा पर आपकी अमृतमय वाणी का विपरीत परिणमन हुआ और मैं अपने वैर का बदला लेने के लिए महाक्रूर बन गया। प्रभु आप तो पवित्रात्मा हैं। आपके हृदय में क्रोध का लेस भी नहीं है। हे क्षमा के सागर! मुझ अधम को क्षमा कर दीजिए। वास्तव में मैं न तो मुँह दिखाने योग्य हूँ, न क्षमा का पात्र हूँ। परन्तु प्रभो! मैं आपकी शरण आया हूँ। आपको शरणागत पर कृपा करनी होगी।

इस प्रकार बार–बार क्षमा मांगते हुए मेघमाली ने प्रभु को वन्दना की और धरणेन्द्र से क्षमायाचना कर स्व–स्थान चला गया। उपसर्ग मिटने पर धरणेन्द्र भी प्रभु को वन्दना करके स्व–स्थान चला गया।

प्रभु वहाँ से विहार करके वाराणसी आश्रम पद उद्यान में पधारे और घातकी वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन हो गए। दीक्षा दिन से तिरयासी रात्रि पूर्ण हो चुकी थी। चैत्र कृष्ण 4, विशाखा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग था। घातीकर्म नष्ट होने का समय आ गया था। भगवान ने धर्म–ध्यान से आगे बढ़कर शुक्ल ध्यान में प्रवेश किया और वर्द्धमान परिणामों से घाती कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट कर लिया। देव–देवियों और इन्द्रों ने महोत्सव किया। केवलज्ञान होने के बाद भगवान ने अपनी प्रथम धर्मदेशना दी। चतुर्विध संघ की स्थापना की। 30 वर्ष तक गृहस्थावस्था, 70 वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन कर 100 वर्ष की आयु में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए।

-----●-----

2. सुलसा श्राविका

परिचय- राजगृह नगर में 'नाग' नामक सारथी रहता था, उसकी पत्नी का नाम सुलसा था। वह श्राविका थी। भगवान महावीर स्वामी की तीन लाख अट्ठारह हजार श्राविकाओं में उसका नाम पहला था क्योंकि वह सम्यक्त्व में दृढ़ थी तथा उसमें दान की भावना आदि कई विशिष्ट गुण थे।

पुत्र के अभाव में- सुलसा को कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था पर उसने इसका कोई विचार नहीं किया। प्रायः स्त्रियाँ पुत्र न होने पर देवी-देवताओं की शरण लेती हैं। उनकी मनौती करती हैं। मंत्र-तंत्र करवाती हैं पर उसने देवी-देवताओं की शरण या मंत्र-तंत्र करने का मन में भी विचार नहीं किया। उसकी यह दृढ़ता थी कि पुत्र चाहे हो, चाहे ना हो परन्तु अरिहंत देव के अतिरिक्त अन्य किसी देव को मस्तक नहीं झुकाऊँगी। नमस्कार मंत्र के अतिरिक्त दूसरा मंत्र कभी स्मरण नहीं करूँगी।

सुलसा के पति नाग को पुत्र की बहुत अधिक अभिलाषा थी। उसने पुत्र प्राप्ति के लिए अन्य देवी-देवताओं को पूजना आरम्भ किया व मंत्र-तंत्रों का स्मरण चालू किया।

सुलसा-नाग की चर्चा

जब सुलसा को यह जानकारी हुई, तो उसने अपने पति को समझाया-'नाथ! इन देवी-देवताओं की पूजा छोड़ो। मंत्र-तंत्र का स्मरण छोड़ो। हमें एकमात्र अरिहंत देव और नमस्कार मंत्र का ही स्मरण करना चाहिये। अरिहंत व सिद्ध को ही देव मानना चाहिये। अन्य देव-देवियों और मंत्र-तंत्रों पर श्रद्धा रखना मिथ्यात्व है।'

'नाग' ने कहा-सुलसे! मैं अरिहंत देव और नमस्कार मंत्र पर ही श्रद्धा रखता हूँ। मुझे अन्य देवी-देवताओं और अन्य मंत्रों पर श्रद्धा नहीं है, मैं उन्हें संसार तारक या मोक्ष देने वाला नहीं मानता, पर ये लौकिक देव और लौकिक मंत्र हैं। पुत्र की आशा लौकिक आशा है। मैं मानता हूँ कि ये लौकिक आशा पूर्ण करने में सहायता दे सकते हैं इसलिये मैं इन्हें पूजता हूँ और स्मरण करता हूँ। सुलसा ने कहा- स्वामी! यद्यपि अन्य देवों और मंत्रों पर हमारी श्रद्धा नहीं है, पर उन्हें पूजने और उनके स्मरण करने की प्रवृत्ति तो मिथ्यात्व की ही है। हमें मिथ्यात्व की प्रवृत्ति से बचना ही चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यदि पूर्व जन्म में शुभ कर्म नहीं किये हैं, तो यह अन्य देव-देवियाँ और मंत्र-तंत्र हमें कुछ भी नहीं दे सकते और न सहायता ही कर सकते हैं।

नाग ने कहा- सुलसे! तुम्हारा कहना सत्य है। हमारे पूर्व जन्म के पुण्य अभी उदय में न आये हों परन्तु भविष्य में उदय की संभावना हो तब तो ये देवता और मंत्र हमारी सहायता समय से पूर्व उदय में लाकर कर सकते हैं। यह सोच कर ही मैं अन्य देवों को नमस्कार करता हूँ, मंत्रों का स्मरण करता हूँ।

सुलसा ने कहा- नाथ! आपका यह कहना सत्य है। परन्तु मैं मिथ्यात्व की प्रवृत्ति अपनाना नहीं चाहती। यदि मान लो कि हमारे अन्तराय का उदय है तो दोनों ओर हमारी हानि ही है। पुत्र की प्राप्ति भी नहीं होगी और मिथ्यात्व प्रवृत्ति का पाप भी लग जाएगा। यदि आपको पुत्र की अभिलाषा है तो आप अन्य स्त्री से लग्न कर लीजिये, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति का सेवन मत कीजिये। जो लोग मुझे बांझ कहते हैं इसका आप कोई भी विचार मत कीजिये। जो सम्यक्त्व पर दृढ़ता का महत्व जानते हैं, वे हमारी निंदा नहीं करेंगे तथा जो सम्यक्त्व दृढ़ता का महत्व नहीं जानते हैं, उनकी बात हमें सुननी ही क्यों चाहिये?

नाग ने कहा- 'सुलसे! मैं तुम्हारा कहना मानकर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति छोड़ देता हूँ पर मैं दूसरा विवाह नहीं करूँगा। मैं पुत्र चाहता हूँ पर तुम्हारी ही कुक्षी से उत्पन्न पुत्र चाहता हूँ।'

सुलसा ने कहा- धन्य है आर्यपुत्र! आपने मिथ्या प्रवृत्ति छोड़ने का अच्छा निश्चय किया। धर्म पर दृढ़ रहने से अशुभ कर्मों का क्षय होता है जिससे अनिष्ट का विनाश होता है और इष्ट की प्राप्ति होती है।

धन्य है सुलसा को, जिसने बांझ रहना स्वीकार किया, अपने ऊपर सौत का आना स्वीकार किया, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति करना स्वीकार नहीं किया। स्वयं ने मिथ्यात्व त्यागा और पति को भी मिथ्यात्व से दूर रखा।

शकेन्द्र द्वारा प्रशंसा- सुलसा की इस दृढ़ता और तत्त्व ज्ञान की प्रशंसा करते हुए पहले देवलोक के 'शक्र' नामक इन्द्र ने देवताओं की भरी सभा में कहा- 'राजगृह नगर के नाग सारथी की पत्नी सुलसा श्राविका धन्य है क्योंकि वह सम्यक्त्व पर दृढ़ है। कोई देव दानव भी उसे सम्यक्त्व से डिगा

नहीं सकता।'

उसकी अरिहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवली प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा इतनी दृढ़ है कि वह संसार का सुख छोड़ सकती है, पर मिथ्यात्व की प्रवृत्ति कभी नहीं अपनाती। उसे कितनी भी हानि पहुँचे, कितना भी कष्ट पहुँचे, फिर भी श्रद्धा से नहीं डिगती।

देव द्वारा परीक्षा- एक मिथ्यादृष्टि देव को यह बात सहन नहीं हुई। वह सुलसा की परीक्षा के लिए साधु का रूप बनाकर सुलसा के घर पहुँचा। सुलसा ने उसको साधु समझ कर वन्दन, नमस्कार किया एवं कहा- भन्ते! मेरे योग्य सेवा फरमाइये। देव ने कहा- श्राविके! मेरे वृद्ध गुरु के शरीर में भयंकर बीमारी है। उनके उपचार के लिये वैद्यों ने मुझे लक्षपाक तेल बताया है। इसलिये मुझे उस तेल की आवश्यकता है। यदि तुम्हारे घर प्रासुक (सूझता) हो तो चाहिये। सुलसा ने कहा- भंते! आप कृपा कीजिये, आज का दिन धन्य है। यह कहकर वह लक्षपाक तेल लेने गई। लक्षपाक तेल लाख वस्तुओं से बनता है। उसके बनने में लाखों रुपये खर्च होते हैं। लक्षपाक तेल की उसके घर में तीन शीशियाँ थी। वे जहाँ थी, वहाँ पहुँच कर वह एक शीशी उतारने लगी कि देव माया से शीशी फिसलकर नीचे गिर गई और फूट गई। दूसरी और तीसरी शीशी की भी यही स्थिति हुई। इस प्रकार उसके लाखों रुपये मिट्टी में मिल गये पर उसके मन में खेद नहीं हुआ। उसे यह विचार ही नहीं आया कि ये कैसे साधु हैं जिन्हें दान देते हुए मेरे मूल्यवान पदार्थ नष्ट हो गये, वरन् उसे इस बात का खेद हुआ कि मेरी यह वस्तुएँ संतों के काम नहीं आ सकी। मेरे हाथों से दान नहीं हो सका। संत मेरे यहाँ पधारे परन्तु उन्हें आवश्यक वस्तु नहीं मिल सकी। मैं दानान्तराय कर्म के उदय से औषधि नहीं दे सकी। अब इनके वृद्ध गुरु (संत) की बीमारी कैसे दूर होगी। आह! वे मुनिवर कितने कष्ट पा रहे होंगे। मुझ अभागिन ने ध्यान से वह शीशियाँ नहीं उतारी। ऐसे समय में मुझसे सावधानी क्यों नहीं रही? धिक्कार है मुझे, यह कहते हुए उसका मुँह कुम्हला गया, आँखें डबडबा गईं।

देवता यह सारे दृश्य देख रहा था। अवधि ज्ञान से सुलसा की व्यथा को भी समझ रहा था। उसे प्रत्यक्ष हो गया कि शकेन्द्र जो कह रहे थे, वह सर्वथा सत्य था। सचमुच यह सम्यक्त्व में बहुत दृढ़ है। देवता ने सुलसा के

सामने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया और कहा- श्राविके! खेद न करो, यह तो मेरी देव माया थी, जो मैंने तुम्हारी सम्यक्त्व की दृढ़ता की परीक्षा के लिये की थी। धन्य हो तुम! इन्द्र भी तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।

सुलसे! 'मैं प्रसन्न हुआ। जो तुम्हारी इच्छा हो वही मांगों। मैं उसकी पूर्ति करूँगा।' सुलसा ने कहा- देव! मेरी तो यही इच्छा है कि मेरी सम्यक्त्व पर दृढ़ता बनी रहे, मेरा सम्यक्त्व रत्न सुरक्षित रहे। पर यदि आप कुछ देना चाहते हैं तो मेरे पति को पुत्र की अभिलाषा है, वह पूरी करें।

देवता ने उसे पुत्र उत्पत्ति में सहायक बत्तीस गुट्टिकाएँ दी और समय पड़ने पर 'मुझे स्मरण करना'- यह कहकर वह देवलोक में लौट गया। कालान्तर में उसके अनेक पुत्र हुए।

भगवान द्वारा प्रशंसा- चम्पानगरी की बात है। भगवान महावीर स्वामी वहाँ विराजमान थे। वहाँ अम्बड़ नामक एक श्रावक आया। वह अनेक विद्याओं का जानकार था। उसने भगवान महावीर स्वामी की वाणी सुनकर, उन्हें वन्दना-नमस्कार करके कहा 'भंते! आपका उपदेश सुनकर मेरा जन्म सफल हो गया। अब मैं राजगृह नगरी जा रहा हूँ।'

भगवान ने कहा- 'अम्बड़!' तुम जिस नगरी में रह रहे हो, वहाँ सुलसा श्राविका रहती है। वह सम्यक्त्व में बहुत दृढ़ है।

अम्बड़ द्वारा परीक्षा : अम्बड़ ने सोचा- भगवान जो कुछ कह रहे हैं वह सत्य ही है किन्तु मैं परीक्षा करके प्रत्यक्ष देखूँ तो सही कि 'वह सम्यक्त्व में किस प्रकार दृढ़ है।'

राजगृह पहुँच कर विद्या के बल से उसने संन्यासी का रूप बनाया और सुलसा के घर जाकर कहा- ''आयुष्मति (लम्बे आयुष्य वाली)! मुझे भोजन दो। इससे तुम्हें धर्म होगा, मोक्ष की प्राप्ति होगी।''

सुलसा ने उत्तर दिया- 'संन्यासीजी! अनुकम्पा बुद्धि से मैं प्रत्येक को भोजन दे सकती हूँ आपको भी देती हूँ परन्तु, धर्म और मोक्ष आपको देने से नहीं हो सकता। किन्हें देने से धर्म और मोक्ष होता है? यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ।'

यह सुनकर अम्बड़ उसके घर से बिना भिक्षा लिए लौट गया और नगर के बाहर गया। वहाँ उसने आकाश में अधर कमल का आसन वैक्रिय से बनाया और उसके ऊपर बैठकर तपश्चर्या करने का दिखावा करने लगा।

लोग उसे अधर कमल के आसन पर तपश्चर्या करते देख आश्चर्यचकित होने लगे।

कुछ स्त्रियाँ, जो उस अम्बड़ को देखकर लौटती थीं, वे सुलसा के पास अम्बड़ के कमल अधरासन और तपश्चर्या की प्रशंसा करतीं। उसके अतिशय का बखान करतीं और सुलसा को उसके दर्शन करने की प्रेरणा करतीं, पर वह इन आडम्बरों के चक्कर में नहीं आई।

सैकड़ों-हजारों लोग अम्बड़ के दर्शन के लिए आने लगे। उसकी पूजा-भक्ति होने लगी और पारणे के लिए निमन्त्रण पर निमन्त्रण आने लगे। पर वह सबको निषेध करता रहा।

लोगों ने पूछा - 'योगीराज!' आप पारणे के लिये किसी का भी निमंत्रण स्वीकार नहीं करते, तो क्या हमारा नगर अभागा है? आप जैसे महान् अतिशय वाले तपस्वी, हमारे यहाँ से आहार लिए बिना भूखे ही पधार जाएँगे? नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। हमारे गाँव में कोई न कोई तो ऐसा पुण्यशाली होगा, जो आपको पारणा कराकर कृतार्थ बनेगा। आप कृपया उस भाग्यशाली का नाम बतावें, हम अभी उसे सूचित करते हैं।

दिव्य योगी रूपधारी अम्बड़ ने कहा- ''पुरजनो! आपके यहाँ सुलसा नामक नाग पत्नी रहती है। वह यदि अपने यहाँ पारणा करायेगी तो मैं पारणा करूँगा।'' यह सुनकर लोग सुलसा के घर पहुँचे।

सुलसा की धर्मनिष्ठा- सब लोगों ने आकर सुलसा से कहा - 'बधाई है सुलसा! बधाई है। वे अपूर्व योगीराज तुम्हारे यहाँ पारणा करना चाहते हैं। उन्हें पारणा कराओ और भाग्यशाली बनो।' तो उसने अम्बड़ की उस विकुर्वणा को जानकर उत्तर दिया- ''पुरजनो! मैं अरिहंत को ही देव, निर्ग्रन्थ को ही गुरु और केवली प्ररूपित तत्त्व को ही धर्म मानती हूँ। मुझे इन जैसे साधुओं पर कोई श्रद्धा नहीं है।''

''सच्चे साधु अपने अतिशय का दिखावा और तप की प्रसिद्धि नहीं करते। 'उस घर पारणा करूँगा' ऐसा नहीं कहते हैं। वे अपनी उपलब्धियों (ऋद्धियों) को गुप्त रखते हैं, तपश्चर्या को प्रकट नहीं करते हैं। बिना सूचना दिए घरों में प्रवेश करते हैं और नाना घरों से गोचरी लेकर संयम यात्रा चलाते हैं। ऐसे मिथ्या साधुओं को पारणा कराने से कोई फायदा नहीं।'' यह उत्तर सुनकर पुरजन बहुत खिन्न हुए। कुछ ने यह उत्तर उस दिव्य रूपधारी

योगीराज को सुनाया। इस उत्तर को सुनकर अम्बड़ को यह प्रत्यक्ष हो गया कि सुलसा सम्यक्त्व में कितनी दृढ़ है? यह आडम्बर और लोकमत से किस प्रकार अप्रभावित रहती है।

अम्बड़ द्वारा प्रशंसा- उसने अपना वेश बदला और सभी लोगों के साथ 'नमस्कार मंत्र' का उच्चारण करते हुए सुलसा नागपत्नी के घर में प्रवेश किया। सुलसा ने उस समय अम्बड़ को स्वधर्मी समझ कर उठकर उसका सत्कार-सम्मान किया। अम्बड़ ने भी भगवान द्वारा की गई प्रशंसा पुरजनों को सुनाई और अपने द्वारा की गई परीक्षा बताकर सुलसा की स्वयं अम्बड़ ने भी बहुत प्रशंसा की।

लोगों ने भी यह सब देखकर सुलसा के सम्यक्त्व-दृढ़ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

-----●-----

3. क्षमाधनी-खंधक मुनि

जन्म और शिक्षा- श्रावस्ती नगरी में न्याय नीतिवान् 'कनककेतु' नाम का राजा राज्य करता था। उन्हें सर्वगुण सम्पन्न, 'स्कंधक' नामक एक पुत्र रत्न एवं सुनंदा नामक एक पुत्री रत्न की प्राप्ति हुई। योग्य वय में राजकुमारी सुनंदा का विवाह कांची नरेश पुरुषसिंह के साथ हुआ। राजकुमार स्कंधक 72 कलाओं में निपुण बन विवाह योग्य होने पर स्वजनों ने किसी सुन्दर कन्या से स्कंधक का विवाह करना चाहा पर होनी को कुछ और ही मंजूर था।

विरक्ति और दीक्षानुमति- श्रावस्ती नगरी में आचार्य श्री विजयसेन का आगमन हुआ। राजा कनककेतु एवं राजकुमार स्कंधक आचार्य श्री के दर्शन-वंदन हेतु गये। उनके श्री मुख से जिनवाणी श्रवण कर राजकुमार के भीतर पूर्व भव के सुसंस्कार जागृत हुए। संसार को असार जानकर स्वजनों से दीक्षा की आज्ञा मांगते हैं। पहले तो माता-पिता मोहवश आज्ञा नहीं देते हैं किन्तु अंत में पुत्र का दृढ़ वैराग्य देखकर आज्ञा देते हुए कहते हैं- ''हे पुत्र! जिस सिंह वृत्ति से दीक्षा ले रहे हो उसी सिंह-वृत्ति (शूर-वीरता) के

साथ पालन करना'' राजकुमार माता-पिता की आज्ञानुसार उत्कृष्ट संयम का पालन करते हुए ज्ञानार्जन के साथ-साथ घोर तप भी करने लगे। गीतार्थ बन जाने पर गुरु ने उन्हें एकाकी विचरण की आज्ञा दी और वे ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे।

पिता का ममत्व- इधर माता-पिता को चिंता हुई कि राजकुमार स्कंधक बड़ा सुकुमार व युवा है। अति दुष्कर संयम मार्ग पर यह कैसे चल सकेगा? इसलिए पिता ने मोहवश उनके संरक्षण के लिये अपने पाँच सौ सुभटों-सेवकों को बहुत ही सजगता के साथ गुप्त रूप से साधारण नागरिकों की वेशभूषा में पीछे रहने का आदेश दिया।

बहिन के राज्य में- दीक्षा के दिन से ही कठोर तपस्या करते हुए स्कंधक मुनि ने अपने शरीर को तप की भट्टी में सुखा दिया। जिससे उनका शरीर चमड़ी से ढंका हुआ हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया। ऐसे तपोमूर्ति महामुनि विचरण करते हुए अपनी सांसारिक बहन के राज्य में पधारे। साधारण वेश धारी सैनिकों ने समझा कि इस समय मुनिराज अपने बहनोई के राज्य में पधारें हैं अत: शंका जैसी कोई बात नहीं है। ऐसा सोचकर रक्षक निश्चिंत हो अपने कर्त्तव्य से विमुख हो अन्य प्रवृत्तियों में संलग्न हो गए।

इधर महामुनि स्कंधक अनेक उच्च, मध्यम, निम्न कुलों से निर्दोष भिक्षा ग्रहण करते हुए राजमहल के निकट पहुँचे। उस समय महल के गवाक्ष में राजा और रानी मधुर वार्तालाप में संलग्न थे। इतने में महारानी की नजर तप तेज से प्रदीप्त मुनिश्रीजी के शरीर पर पड़ी और विचार करने लगी- अहो! मेरे भ्रातामुनि भी कहीं न कहीं इस भीषण गर्मी में तप्ती धरा पर नंगे पांवों से इसी वेश में भिक्षाचर्या के लिए परिभ्रमण कर रहे होंगे।

विचारों की तल्लीनता में रानी मुनि को एकटक दृष्टि से निहारने लगी। तपाराधना से मुनि का शरीर अत्यन्त कृश हो जाने से रानी अपने भ्राता मुनि को पहचान नहीं पाई। कठोर साधुचर्या और स्वयं की आरामदायक स्थिति की तुलना करते हुए महारानी भ्राता मुनि के दुस्सह कष्टों के स्मरण से रोमांचित हो गई और उनकी आँखों से आंसू छलक पड़े।

राजा का संदेह- महारानी के अश्रुओं को देख राजा गंभीर बन गए व कारण जानने के लिए राजा ने पथ की ओर देखा तो उनकी नजर मुनिश्री पर पड़ी। अहो! तो यह बात है। इसके कारण ये आंसू हैं। राजा का मन

संशय ग्रस्त बन गया। रानी के चरित्र में संदेह की आशंका मानकर तत्काल राजा ने निर्णय किया कि इस साधु को ही मरवा दूं। जिससे मेरे और रानी के संबंधों को कोई हानि नहीं पहुँचे।

राजा का आदेश- राजा वहाँ से अपने व्यक्तिगत महल में आया और चाण्डालों को बुलाकर आदेश दिया कि राजमहल के निकट राजपथ से जो भिक्षुक कुछ देर पूर्व निकला है, उसे पकड़कर किसी दूर एकान्त जंगल में या वधशाला में ले जाओ और सिर से पांव तक उसकी खाल उतार लो।

चाण्डाल आश्चर्यचकित थे। वे जानते थे कि ऐसे भिक्षुक जैन मुनि होते हैं और जैन मुनि तो रास्ते की चींटी तक को अपने पैरों के नीचे नहीं आने देते, ऐसे करुणाशील होते हैं, पर क्या करते, वे राजा की आज्ञा से इंकार करने का साहस भी कहाँ से लाते। बेमन से वे चाण्डाल उन मुनिश्री के पास आकर राजाज्ञा की बात बताते हैं। मुनिश्री समझ जाते हैं कि विकट परिषह उपस्थित हो गया है, पर वे अपना धैर्य नहीं खोते, मन को विषम भावों में नहीं आने देते। चुपचाप चाण्डालों के बताए पथ पर चलने लगते हैं। जंगल में एक सुनसान स्थल पर चाण्डाल ठहरते हैं, मुनि भी रूक जाते हैं और ध्यानस्थ हो जाते हैं।

मुनि की क्षमाशीलता- चाण्डाल सुतीक्ष्ण धार वाले शस्त्रों से मुनि की खाल उतारने लगते हैं; चमड़ी उधेड़ने लगते हैं। असह्य वेदना होती है। मुनिराज अपार धैर्य धारण कर सहज बने रहते हैं कि ''मैं शरीर नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। जो वेदना हो रही है वह मुझे नहीं, शरीर को हो रही है। इन चाण्डालों की और राजा की भी कोई गलती नहीं है। गलती यदि किसी की है तो मेरी। निश्चय ही मैंने अपने किसी पिछले जन्म में कोई महा अशुभ कर्म किया होगा, जिसका फल इस रूप में भोगना पड़ रहा है। शरीर के अधिकांश भाग की चमड़ी उतर चुकी थी और चाण्डाल का कार्य जारी था। उस समय मुनि स्कंधक परिणामों की विशुद्धता से क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो गये। केवलज्ञान-केवलदर्शन को प्राप्त कर सब दुःखों से मुक्त हो गए।

भ्राता मुनि की हत्या-सुनन्दा ने जाना- चाण्डाल अपना कार्य समाप्त कर वहाँ से चले गये। उधर रक्त रंजित मुनिवर की मुखवस्त्रिका, रजोहरण को मांस का टुकड़ा समझ एक चील झपट्टा मारकर उसे अपने पंजों में दबोच, आकाश में उड़ने लगी। संयोग से वह रजोहरण, मुखवस्त्रिका उसके

पंजों से छूट गई और ठीक महारानी सुनन्दा के महल में, उन्हीं के समक्ष गिरी। यह यहाँ कैसे? किसी पक्षी ने गिराई है तो किसके खून से भरी हुई है और क्यों?

दासियों से ज्ञात कराती है। दासियां आकर जो कुछ बताती है उससे मुनि के घात का प्रसंग, राजाज्ञा का प्रसंग, चमड़ी उतारने का प्रसंग ज्ञात हो जाता है। तो महाराज ने स्वयं मुनि की हत्या करवाई है। जिज्ञासा बढ़ जाती है, आगे खोज करवाती है, तब महारानी को ज्ञात होता है कि जिस मुनि की हत्या करवाई गई, वह उनका ही भ्राता था। महाराज ने उसे लेकर चारित्रिक संदेह किया जिसका यह परिणाम था।

महाराज का पश्चाताप- महारानी अत्यन्त व्यथित हुई। बड़ा करुण विलाप किया। महाराज को भी जब सारी बातें ज्ञात हुई तो वे भी बहुत पछताये। सोचा- हाय! मैंने कैसा जघन्यतम नृशंसता पूर्ण कुकृत्य कर डाला? अरे! मेरे जैसा पापी, दुष्ट और हत्यारा कौन इस पृथ्वी पर होगा? जिसने एक निरपराधी, शांत, दांत क्षमावीर साधु की हत्या करवा दी। इस पर रानी बोली- हे स्वामी! ऐसा दुष्कृत्य करने से पहले पता तो लगा लेते, क्योंकि न तो मैंने विकारवश मुनिराज पर दृष्टि डाली थी और न ही मुनिराज के मन में किसी प्रकार का पापांश था। इस प्रकार महाराजा को सारी बातें ज्ञात हुई तो वे बहुत पश्चाताप करने इगे।

काचरे छीलने की प्रशंसा का फल-देह की उतारी खाल- एक बार किसी लब्धिधारी, विशिष्ट ज्ञानी मुनि का कांचीपुर आना हुआ तो राजा व रानी गये उनके चरणों में, दर्शन वंदन किया और पूछा 'भगवान् ! मेरे द्वारा मुनि हत्या जैसा जघन्य पाप का कारण क्या था? क्या केवल मन में उत्पन्न संदेह ही था या अन्य कुछ?'

मुनिराज ने बताया- ''आज से एक हजार वर्ष पूर्व स्कंधक राजकुमार, अर्थात् मुनिजी के जीव ने एक काचरे को बहुत ही सावधानी व चतुरता से ऐसा छीला कि उसका छिलका अखण्ड रहा। उस समय उस जीव ने अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की कि अहा! मैंने कितनी चतुरता के साथ छिलका अखण्डित उतार लिया। उसे गोल-गोल बनाकर बता दूं तो कोई जान नहीं सकता कि यह साबुत काचरा होगा या केवल छिलका है। राजन! काचरे का वह जीव तुम हो। एक हजार वर्ष पूर्व के वैराणुबंध का बदला तुमने इन मुनि

की खाल उतरवाकर लिया है। काचरा (ककड़ी) छिलने वाले जीव ही इस भव में स्कंधककुमार और बाद में स्कंधक मुनि बने। पाप में अति प्रसन्नता अनुभव के कारण निकाचित कर्म बंधन हुए। अतः तुमने उससे पूर्व वैर का बदला इस तरह लिया।''

राजा पुरुषसिंह व रानी सुनंदा दीक्षित- राजा पुरुषसिंह के मन में मुनिराज से पूर्वभव का सारा प्रसंग चिंतन-मनन करते हुए संयम पथ ग्रहण करने की भावना जगी। रानी सुनंदा तो भ्राता मुनि की खाल खिंचवाने के प्रसंग से ही संसार से विरक्त बन चुकी थी। इन दोनों ने दीक्षा अंगीकार कर अपना आत्म कल्याण का पथ प्रशस्त किया।

राजा कनककेतु व रानी मलयसुन्दरी भी दीक्षित- स्कंधक मुनि के माता-पिता ने संरक्षण हेतु जिन गुप्तचरों को नियुक्त किया था, उन्होंने आकर महाराजा कनककेतु एवं रानी मलयसुन्दरी को यह बता दिया कि किस तरह मुनिवर की खाल उतार ली गई और उन्होंने कैसे अत्यन्त शांत स्वभाव से सहन करते हुए प्राण त्याग दिए।

गुप्तचरों से अपने दीक्षित पुत्र के पूर्ण प्रसंग को जानकर वे दोनों राजा-रानी भी संसार से विरक्त बन दीक्षित हो गये। उन्होंने भी अपना शेष जीवन 'स्व' में रमण करते हुए निजात्मा को भावित करते हुए बिताया एवं समाधिमरण को प्राप्त किया।

-----●-----

काव्य विभाग

1. श्री भक्तामर - स्तोत्र

(रचयिता : आचार्य श्री मानतुंग)

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि - प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।
सम्यक् - प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव - जले पततां जनानाम्॥१॥

यः संस्तुतः सकल - वाङ्मय तत्त्वबोधा -
दुद्भूत - बुद्धि पटुभिः सुर - लोक - नाथैः।
स्तोत्रैर् जगत्त्रितय - चित्त - हरै - रुदारैः।
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित - पाद - पीठ
स्तोतुं समुद्यत - मतिर् - विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल - संस्थित - मिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्?॥३॥

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र! शशाङ्क - कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर - गुरु - प्रतिमोऽपि बुद्धया?
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्? ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान् - मुनीश,
कर्तुं स्तवं - विगत - शक्तिरपि - प्रवृत्तः।
प्रीत्याऽऽत्म - वीर्य - मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास - धाम,
त्वद् - भक्तिरेव मुखरी - कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव - संतति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय - मुपैति शरीर - भाजाम्।
आक्रान्त - लोक - मलि - नील - मशेषमाशु,
सूर्यांशु - भिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम्॥७॥

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,
मुक्ता - फल - द्युतिमुपैति ननूद - बिन्दुः॥८॥

आस्तां तव स्तवन - मस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे - सहस्त्र - किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकास - भाञ्जि॥९॥

नात्यद्भुतं भुवन - भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म - समं करोति॥१०॥

दृष्ट्वा भवन्त - मनिमेष - विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः,
पीत्वा पयः शशिकर - द्युति - दुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जल निधे - रसितुं क इच्छेत्॥११॥

यैः शान्त - राग - रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक - ललाम - भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान - मपरं न हि रूपमस्ति॥१२॥

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग - नेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित - जगत् - त्रितयोपमानं।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद् वासरे भवति पाण्डु-पलाश -कल्पम्?१३॥

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कला - कलाप-
शुभ्रा - गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वर - नाथ - मेकं,
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम्?।१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्
नीतं मनागपि मनो न विकार - मार्गम्।
कल्पान्त - काल - मरुता चलिता - चलेन,
किं मन्दराद्रि - शिखरं चलितं कदाचित्? ।१५॥

निर्धूम - वर्ति - रप - वर्जित - तैलपुरः,
कृत्स्नं जगत् - त्रय - मिदं प्रकटी - करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्,
दीपोऽपरस् - त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥१६॥

-----●-----

2. आत्मशुद्धि

आत्मशुद्धि हित धर्म ध्यान का, चिन्तन जो नर करता है।
अशुभ कर्म को दूर हटाकर मोक्षमार्ग पग धरता है।।१।।

जग में अकेला आया हूँ और यहाँ से अकेला जाऊँगा।
कर्म शुभाशुभ संग में लेकर, यथास्थान मैं पाऊँगा।।२।।

मेरा मेरा करके फँसता, नहीं कोई जग में तेरा।
देह छोड़कर उड़ेगा पंछी, भिन्न स्थान होगा डेरा ।।३।।

महा विडम्बना है परिजन की, अन्त साथ नहीं जाता है।
निर्भय होकर देखो प्राणी, मरण अकेला पाता है।।४।।

धन्य-धन्य नमिराज ऋषि ने, एकत्व भावना भायी थी।
कंकण से लेकर प्रेरणा, झट मिथिला ठुकराई थी।।५।।

स्वर्गपति ने दस प्रश्नों का, भावपूर्ण उत्तर पाया।
खुश होकर के स्वयं शकेन्द्र ने, ऋषि वर गुण गौरव गाया।।६।।

क्षण भंगुर है तेरी काया, क्षण भंगुर है जग की माया।
खूब खिलाया, खूब पिलाया, फिर भी है नश्वर काया।।७।।

देख-देख तन की सुन्दरता, खुश हो होकर फूल रहा।
लूट गई तेरी रूप सम्पदा, सनत् चक्री को भूल रहा।।८।।

वैभव में मतवाला बनकर, झूम रहा जैसे हस्ती।
रावण जैसे चले गये, फिर तेरी कौन भला हस्ती।।९।।

पुद्गल के ये रूप पराये, जिन्हें तू अपना मान रहा।
ज्ञानी कहते इन्हें छोड़ दे, क्यों तू अपनी तान रहा।।१०।।

त्यागी ममता जागी समता, नश्वरता चित्त में लाया।
अनित्य भावना भाकर के ही, भरत चक्री केवल पाया।।११।।

रोग शत्रु जब तन को घेरा, नहीं किसी का दाव लगा।
आत्मिक शांति तब ही पाता, मन में समता भाव जगा॥१२॥

स्वयं बांधता स्वयं भोगता, नहीं कोई शरण दाता।
त्राहि-त्राहि करके रोता, स्वयं जगत में दुःख पाता॥१३॥

जन्म जरा मृत्यु के भय से, भयभीत बना पामर प्राणी।
कुकृत्यों को नहीं छोड़ता, पिला जा रहा दुःख की घाणी॥१४॥

तीन खण्ड के स्वामी थे पर, मिला नहीं मरते पानी।
पुरजन परिजन पास न आये, बीती थी जब जिन्दगानी॥१५॥

अहो अनाथी मुनि के सिर में, घोर वेदना छाई थी।
रहे ताकते पारिवारिकजन, चैन पलक नहीं पायी थी॥१६॥

अरहट माला सम जग लीना, सदा पलटती रहती है।
नहीं जगत में स्थिरवासा, जिन वाणी यूं कहती है॥१७॥

अपना-अपना किसे पुकारे, जगजीवन तो है सपना।
छोड़ कल्पना अपने मन की, सत्य नाम प्रभु का जपना॥१८॥

जग का सुख शाश्वत नहीं होता, जैसे बादल की छाया।
क्यों भरमाया भौतिक सुख में, बिजली सी चंचल माया॥१९॥

कोई किसी का नहीं है शत्रु, नहीं किसी का मित्र कोई।
कर्माधीन जगत की लीला, क्यों तूने सन्मति खोई॥२०॥

शालिभद्र क्या रिद्धि पाए, नृप श्रेणिक देखन आया।
संसार भावना भा करके ही, जग बंधन से मुक्ति पाया॥२१॥

-----●-----

3. वह शक्ति हमें दो

वह शक्ति हमें दो दयानिधे।
कर्त्तव्य मार्ग पर डट जावें।
पर-सेवा, पर-उपकार में हम,
निज जीवन सफल बना जावें॥१॥

हम दीन, दुःखी, निबलों, विकलों,
के सेवक बन संताप हरें।
जो हैं भूले-भटके अटके
उनको तारें खुद तर जावें॥२॥

छल, द्वेष, कपट, पाखण्ड, झूठ।
अन्याय से निश-दिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध, सरल अपना।
शुचि प्रेम सुधा नित बरसावें॥३॥

निज आन-मान मर्यादा का,
प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जाति में जन्म लिया,
बलिदान उसी पर हो जावें॥४॥

-----●-----

4. मनोरथ तीन उत्तम ये

मनोरथ तीन उत्तम ये, जिनेश्वर नित्य भाता हूँ।
कृपा की आशा रखता हूँ सफल हो शीघ्र चाहता हूँ।।टेर।।

परिग्रह पाप का दल-दल, फँसा हूँ, फँसता जाता हूँ।
घटे थोड़ा बहुत प्रतिदिन, बड़ा ही कष्ट पाता हूँ।।१।।

प्रमादी गृहस्थ जीवन है, अधूरी धर्म करणी है।
बनूँगा कब मुनि मुझमें, हो ऐसी शक्ति चाहता हूँ।।२।।

मोक्ष की है लगन पूरी, न कोई अन्य आशा है।
देह छूटे समाधि से, अन्त शुभ भाव चाहता हूँ।।३।।

दीन हूँ दीनता करता, देवता! दान तू करना।
मनोरथ पूर्ण सब करना, चरण तेरे पकड़ता हूँ।।४।।

कहे केवल सुनो 'पारस', विरुद अपना निभाना तुम।
कहूँ अब और आगे क्या? न खोजे शब्द पाता हूँ।।५।।

-----●-----

सामान्य ज्ञान विभाग

1. जयंतीबाई के प्रश्न

श्री भगवती सूत्र के 12 वें शतक के दूसरे उद्देशक के आधार से 'जयंतीबाई' के प्रश्न और भगवान के उत्तर का वर्णन इस प्रकार है-

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। एक समय भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। यह समाचार सुनकर सभी नागरिक हर्षित हुए। राजा उदायन आदि वन्दनार्थ गये। प्रथम शय्यात्तर जयन्ती श्रमणोपासिका, उदायन नरेश की फूफी थी। वह अपनी भावज-राजमाता मृगावती देवी के साथ प्रभु की वंदना करने के लिए गयी। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। धर्मकथा सुनकर परिषद् लौट गयी। राजा और रानी लौट गये। उस समय जयन्ती श्रमणोपासिका ने भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके विनयपूर्वक पूछा-

1. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव शीघ्र हल्का और भारी होता है?

उत्तर- **जयन्ती!** अठारह प्रकार के पापों का त्याग करने से जीव शीघ्र हल्का होता है और अठारह पापों का सेवन करने से जीव भारी होता है।

2. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव संसार (भव) घटाता है और किस कारण से संसार बढ़ाता है?

उत्तर- **जयन्ती!** 18 पापों का त्याग करने से जीव संसार घटाता है और 18 पापों का सेवन करने से जीव संसार बढ़ाता है।

3. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव संसार (कर्म) को ह्रस्व करता है और किस कारण से जीव संसार को दीर्घ करता है?

उत्तर- **जयन्ती!** 18 पापों का त्याग करने से जीव संसार (कर्म) को ह्रस्व करता है और अठारह पापों का सेवन करने से जीव संसार को दीर्घ करता है।

4. **प्रश्न-** **भंते!** किस कारण से जीव संसार-सागर में परिभ्रमण करता है और किस कारण से जीव संसार-सागर को पार कर जाता है?

उत्तर- **जयन्ती!** 18 पापों के सेवन से जीव संसार-सागर में परिभ्रमण करता है और 18 पापों का त्याग करने से जीव संसार-सागर को पार कर जाता है।

5. **प्रश्न**- **भंते!** जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है या परिणाम से?

उत्तर- **जयंती!** जीवों का भवसिद्धिपना स्वभाव से है, परिणाम से नहीं।

6. **प्रश्न**- **भंते!** क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे?

उत्तर- **हाँ जयंती!** सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे।

7.**प्रश्न**- **भंते!** सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में चले जायेंगे, तो लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जाएगा?

उत्तर- **जयंती!** 'णो इणट्ठे समट्ठे' यह नहीं हो सकता, अर्थात् सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष में जायेंगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा।

भंते! इसका क्या कारण है?

जयंती! यथा दृष्टान्त-जैसे आकाश की श्रेणी अनादि-अनन्त है। उसमें से एक-एक परमाणुखंड जितना प्रदेश एक-एक समय में निकाले। इस प्रकार निकालते-निकालते अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी पूरी हो जाय, तो भी यह आकाश श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार भवसिद्धिक जीव मोक्ष जायेंगे, तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से खाली नहीं होगा।

8. **प्रश्न**- **भंते!** जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए अच्छे?

उत्तर- **जयंती!** कोई जीव सोते हुए अच्छे होते हैं और कोई जीव जागते हुए अच्छे होते हैं।

भंते! इसका क्या कारण है?

जयंती! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते हैं, अधर्म में आनन्द मानते हैं, यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए ही अच्छे हैं। सोते रहने पर वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दु:ख नहीं दे पाते, यावत् परितापना नहीं उपजाते, अपनी तथा दूसरों की आत्मा को अधर्म में नहीं जोड़ते। इस कारण अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे हैं और जो जीव धर्मी हैं, यावत् धर्म से आजीविका करते हैं, वे जागते हुए अच्छे हैं। जागते हुए वे सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को सुखकारी होते हैं, यावत् अपनी तथा दूसरों की आत्मा को धर्म से जोड़ते हैं।

9.-10. जिस प्रकार सोने-जागने के प्रश्नोत्तर कहे उसी प्रकार बलवान् व निर्बल और उद्यमी व आलसी के विषय में भी कहना चाहिए। इसमें विशेषता यह है कि जिसका उद्यम अच्छा होगा, वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत् स्वधर्मी की वैयावच्च में अपनी आत्मा को जोड़ेगा।

11. **प्रश्न-** **भंते!** श्रोतेन्द्रिय के वश में हुआ जीव कैसे कर्म बांधता है?

उत्तर- **जयंती!** आयुष्य-कर्म को छोड़कर बाकी सात कर्मों की प्रकृति यदि ढीली हो तो गाढ़ी-दृढ़ करता है। थोड़े काल की स्थिति हो, तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्द रस वाली हो, तो तीव्र रस वाली करता है। आयुष्य बांधता है अथवा नहीं बांधता, असातावेदनीय कर्म बारम्बार बांधता है और चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

12. से 15.- जिस प्रकार श्रोतेन्द्रिय के विषय में कहा, उसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के विषय में भी कहना चाहिये।

जयंतीबाई श्रमणोपासिका अपने प्रश्नों के उत्तर सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे पूर्ण संतोष हुआ। वह देवानन्दा की तरह दीक्षा लेकर और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गयी।

-----●-----

2. श्रावकजी के चार विश्राम

जैसे- 1. भार ढोने वाले भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर रखे और पहले कंधे को विश्राम दे- यह पहला विश्राम है। 2. भार को चबूतरे आदि पर रखकर मल-मूत्र की बाधा दूर करे, खा-पीकर भूख-प्यास की बाधा दूर करे- यह दूसरा विश्राम है। 3. रात्रि को धर्मशाला आदि में रात भर रहे सोकर दिन भर का श्रम दूर करे- यह तीसरा विश्राम है। 4. जहाँ पर भार पहुँचाना है, ठेठ वहाँ भार पहुँचा दे और निश्चिंत हो जाए- यह चौथा विश्राम है।

इसी प्रकार- 1. बारह व्रत और नवकारसी आदि का प्रत्याख्यान धारण करे, यह श्रावक का पहला विश्राम है। 2. प्रतिदिन सामायिक और

देशावकाशिक व्रत सम्यक् पाले, यह श्रावक का दूसरा विश्राम है। 3. महीने में छः दिन प्रतिपूर्ण पौषध सम्यक् पाले, यह श्रावक का तीसरा विश्राम है। 4. अंतिम समय में संलेखना, संथारा करके भक्त प्रत्याख्यान सहित समाधिमरण स्वीकार करे, यह चौथा विश्राम है।

-----●-----

3. देव, गुरु, धर्म का स्वरूप

अरिहन्तो महदेवो जावज्जीवं❖ सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पण्णतं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं॥१॥

अरिहन्त प्रभु मेरे देव हैं, सम्यक् प्रकार से महाव्रत का पालन करने वाले साधुजन मेरे गुरु हैं और जिनेश्वर देव द्वारा प्ररूपित तत्त्व ही मेरा धर्म है। यावत् जीवन के लिये यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है।

देव - सिद्ध और अरिहन्त प्रभु जो राग-द्वेष से विमुक्त हैं, वे ही हमारे देव हैं। पंच परमेष्ठि पद में अरिहन्त और सिद्ध देव पद पर प्रतिष्ठित हैं। अरिहन्त और सिद्ध देव में अन्तर यह है कि सिद्ध भगवान ने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्मों को सर्वथा क्षय कर दिया है, वे अशरीरी अयोगी बनकर अजर, अमर पद को प्राप्त कर चुके हैं जबकि अरिहन्त भगवान ने चार घनघाती कर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय का क्षय किया है। वे भी आयुष्य पूर्ण होने पर सिद्ध बन जाते हैं। अरिहन्त भगवान तीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। धर्म का मार्ग बताते हैं। उनकी वाणी सुनकर गणधर सूत्र रूप में गुंथन करते हैं।

अरिहन्त के कई सार्थक नाम हैं-

अरिहन्त - शत्रुओं का नाश करने वाले।

❖ आवश्यक संबंधी प्राचीन ग्रंथों में 'जावज्जीवाए' के स्थान पर 'जावज्जीवं' शब्द है, जावज्जीवाए शब्द रखने से छंदोभंग होता है।

जिन - राग-द्वेष को जीतने वाले।

वीतराग - राग-द्वेष आदि कषायों से रहित।

तीर्थंकर - साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप तीर्थ की स्थापना करने वाले।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी - हस्तामलकवत सबकुछ जानने वाले, सबकुछ देखने वाले।

परमात्मा - परम 'शुद्ध' आत्मा।

जैन धर्म क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, संसारी देवताओं को अपना इष्ट नहीं मानते हैं। जो स्वयं काम, क्रोध आदि विकारों में फँसे हैं। वे दूसरे के विकार रहित होने में क्या आदर्श हो सकते हैं? इसलिये जैन धर्म में देव वे ही माने जाते हैं जो राग-द्वेष को जीतने वाले, कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करने वाले परम शुद्ध आत्मा हों।

गुरु - गुरु पद में आचार्य, उपाध्याय और साधु तीन पदों का समावेश है। ये तीनों पद वीतराग देव की आज्ञा आराधक हैं।

आचार्यजी - जिनशासन के नायक एवं संचालक होते हैं।

उपाध्यायजी - जैन आगमों में पारंगत प्रकाण्ड पण्डित होते हैं, वे शास्त्रों का अध्ययन करते हैं एवं कराते हैं।

साधुजी - सर्वत्यागी, निर्ग्रन्थ मुनिराज होते हैं।

ये तीन पद मोक्षमार्ग के साधक होते हैं तथा निम्न पाँच महाव्रतों का पालन करते हैं-

1. अहिंसा - मन, वचन, काया से किसी भी जीव की हिंसा न करना, न करवाना, न करने वाले का अनुमोदन करना।
2. सत्य - मन, वचन, काया से न झूठ बोलना, न बोलवाना, न बोलने वाले का अनुमोदन करना।
3. अचौर्य - मन, वचन, काया से न स्वयं चोरी करना, न दूसरों से करवाना, न करने वाले का अनुमोदन करना।
4. ब्रह्मचर्य - मन, वचन, काया से न अब्रह्मचर्य का सेवन करना, न करवाना, न करते हुए का अनुमोदन करना।

5. अपरिग्रह - मन, वचन, काया से परिग्रह आदि न रखना, न रखवाना, न रखने वाले का अनुमोदन करना।

गुरु के निर्मल जीवन एवं गुण सम्पन्न स्वरूप को दर्शाने वाले कई सार्थक नाम हैं-

श्रमण - संयम व तप में श्रम करने वाले।

निर्ग्रन्थ - राग-द्वेष की समस्त ग्रन्थियों को छोड़ने वाले।

भिक्षु - निर्दोष भिक्षावृत्ति से संयम साधना करने वाले।

यति - पाँच इन्द्रियों का दमन करने वाले।

मुनि - पाप कर्मों में मौन रहने वाले (निरवद्य वचन बोलने वाले)।

ऋषीश्वर - छः काया के जीवों की रक्षा करने वाले।

योगीश्वर - मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकने वाले।

साधु - साधना करने वाले।

गुरु आरम्भ परिग्रह से रहित इन्द्रियों का दमन करने वाले तथा कषायों का शमन करने वाले, समस्त पाप कर्मों से निवृत्त होते हैं। उनका उठना, बैठना, बोलना, चलना, खाना-पीना, विवेकपूर्वक होता है। सत्रह प्रकार के संयम को पालने वाले, परिषह को सहन करने वाले, निर्दोष भिक्षाचर्या करने वाले होते हैं।

धर्म- जो दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को धारण करे (रक्षा करे) उसे धर्म कहते हैं। जिनेश्वर देवों द्वारा बताया हुआ आचरण धर्म है। यह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप है। पापकर्मों का त्याग, कषायों पर विजय पाना, देव, गुरु, धर्म की भक्ति, ज्ञान ध्यान, स्वाध्याय आदि से आत्मा को विशुद्ध एवं पवित्र करना और चारित्र का पालन करना धर्म है। यह श्रावक धर्म एवं मुनि धर्म दो प्रकार का है। (अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म ही जैन धर्म है।)

1. अहिंसा- सामान्य रूप में हिंसा का अर्थ प्राणियों के प्राणों का हनन करना माना जाता है किन्तु जैन दृष्टि में हिंसा शब्द बहुत विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जैन दृष्टि के अनुसार वह सब हिंसा है जो दूसरों को मानसिक, वाचिक एवं कायिक दृष्टि से कष्ट पहुँचाये। अर्थात् संसार के समस्त प्राणियों की मन, वचन, काया से हिंसा न करना, न करवाना, न अनुमोदन करना अहिंसा है। जैन धर्म पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस आदि में भी जीव

मानता है। उनकी हिंसा का भी निषेध करता है। हिंसा होने पर राग-द्वेष की परिणति होती है और उसमें पाप कर्म का बन्ध होता है। पाप आत्मा को दुर्गति में ले जाने वाला होता है और अहिंसा दुर्गति में गिरते हुए को बचाती है। अत: अहिंसा को भी धर्म कहा है। अहिंसा व्रत सभी धर्मों का प्रमुख एवं जिन प्रवचन का सार है। अहिंसा सभी धर्मों का आधार है।

2. संयम - इन्द्रिय और मन का निग्रह करना संयम कहलाता है। अहिंसा धर्म के पूर्ण पालन के लिये संयम आवश्यक है। सावद्य पापकार्यों से निवृत्त होना संयम है, जिनके द्वारा नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता है। मन, वचन और काया का नियमन करना इनकी प्रवृत्ति में यतना रखना संयम है। असंयम से होने वाले आश्रव को रोकना संयम धर्म है। पाँच इन्द्रिय का निग्रह, पाँच अव्रतों का त्याग, चार कषाय पर विजय तथा मन, वचन, काया की विरति को संयम कहा जाता है।

3. तप- इच्छाओं का निरोध तप है। जैन धर्म का एकमात्र लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करना है। राग-द्वेष से मुक्त होने के लिए संयम द्वारा नवीन कर्मों का बन्ध रोका जाता है तथा तप के द्वारा पुराने कर्मों का क्षय होता है। जैन धर्म में तप का भी विशिष्ट अर्थ है। तप का अर्थ सिर्फ शारीरिक (देह) दमन नहीं है वरन् इन्द्रियों और वासनाओं पर विजय प्राप्त करना भी तप की श्रेणी में आता है।

सांसारिक पदार्थों की लालसा से किया गया तप, शुद्ध तप न होकर मात्र काया क्लेश होता है इसलिये तीर्थंकर देवों ने फरमाया है :-

1. इस लोक के भौतिक सुखों की लालसा से तप न करें।
2. परलोक के भौतिक सुखों की इच्छा से तप न करें।
3. यश, कीर्ति एवं पूजा महिमा के लिये तप न करें।
4. केवल कर्म निर्जरा के हेतु ही तप की आराधना करें। जैन दर्शन में बारह प्रकार का तप बताया गया है। **बाह्य तप**- अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रस परित्याग, काया क्लेश, प्रतिसंलीनता।

आभ्यन्तर तप- प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग।

इस प्रकार तपस्या एकान्त आत्म शुद्धि, विषय विकार एवं कषाय को दूर करने एवं कर्म की निर्जरा के लिये की जाती है।

-----●-----

4. रत्नत्रय

रत्नत्रय का अर्थ- सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र है जो मोक्ष का मार्ग है।

सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि, मोक्ष मार्गः

सम्यक् दर्शन- आत्म स्वरूप की प्रतीति, आत्म स्वरूप का विश्वास, वीतराग एवं वीतराग प्ररूपित तत्त्वों पर आस्था होना सम्यक् दर्शन है। जिसे अपनी आत्म सत्ता पर विश्वास है, उसे ही परमात्मा की सत्ता पर विश्वास हो सकता है। जिसको अपनी आत्मा की सत्ता पर आस्था नहीं है, उसे कर्म पर विश्वास नहीं हो सकता। जिसका कर्म पर विश्वास नहीं उसका लोक, परलोक पर विश्वास नहीं हो सकता तो फिर मोक्ष पर विश्वास कैसे हो?

जो आत्मवादी है, वही मोक्ष का साधक है। जड़ और चेतन, स्व और पर, आत्मा और पुद्गल का भेद विज्ञान करना सम्यक् दर्शन है जिसे आत्म बोध एवं चेतना का बोध हो जाता है, वह समझ लेता है कि शरीर एवं आत्मा अलग-अलग है। जीव-अजीव आदि तत्वों के यथार्थ स्वरूप पर अन्तः करण के दृढ़ संकल्प के साथ श्रद्धा करना सम्यक् दर्शन है।

सम्यक् ज्ञान- आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान सम्यक् ज्ञान है। आत्म विज्ञान की उपलब्धि वस्तु के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानना (जैसा है वैसा समझना)। जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन नव तत्त्वों का यथार्थ रूप से ज्ञान करना सम्यक् ज्ञान है।

सम्यक् ज्ञान के द्वारा साधक अपने स्वरूप को समझ कर अपने विकारों को दूर करने का विचार करता है। राग-द्वेष को क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त करना सम्यक् ज्ञान की परिपूर्ण अवस्था है।

सम्यक् चारित्र- आत्मा के अस्तित्व की सही प्रतीति हो जाने पर, उस ज्ञान के अनुसार आचरण करने पर ही साधना परिपूर्ण बनती है। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के अनुसार अहिंसा, सत्य आदि सदाचार का पालन करना सम्यक् चारित्र है। विभाव, मोहजनित विकल्प एवं विचारों को छोड़कर स्वभाव स्वरूप में रमण करना, सम्यक् चारित्र है। यही विशुद्ध संयम है। सर्वोत्कृष्ट शील है।

गृहस्थ के देश सम्यक् चारित्र होता है। साधु के सम्यक् चारित्र की

पूर्णता भी केवलज्ञान के बाद ही होती है।

पहले सम्यक् दर्शन (सच्ची श्रद्धा) होता है। सम्यक् दर्शन होते ही उसी क्षण सम्यक् ज्ञान होता है और इसके बाद सम्यक् चारित्र होता है। मोक्ष की मंजिल पर पहुँचने के पहले सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान रूपी दो चक्षु तथा सम्यक् चारित्र रूपी पैरों की आवश्यकता होती है क्योंकि मार्ग को देखने के लिए ज्ञान दर्शन रूपी चक्षु के साथ मंजिल तक पहुँचने के लिए चलने हेतु पैर आवश्यक है। इस प्रकार सम्यग् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मिलकर मोक्ष के साधन होते हैं। ज्ञान और क्रिया दोनों की परिणति ही रत्नत्रय है और रत्नत्रय की परिपूर्णता का नाम मोक्ष है। यही जीवन का चरम विकास है।

-----●-----

सद्‌गुरु के चरणों में हमने, जिस दिन से शीश झुकाया है।
उस दिन से मेरा जन्म हुआ और सफल हुई यह काया है॥

-----●-----

क्रोध प्रीति का नाश करता है।
मान विनय का नाश करता है।
माया मित्रता का नाश करती है।
लोभ सर्वनाश करता है।

-----●-----

5. सुभाषित

बुरा-बुरा सबको कहूँ, बुरा न दीसे कोय।
जो घट शोधूं आपणो, तो मोसु बुरा न कोय।।1।।

कहवा में आवे नहीं, अवगुण भर्‌या अनन्त।
लिखवा में क्यों कर लिखूं, जानो श्री भगवन्त।।2।।

करुणानिधि कृपा करी, कठिन कर्म मोय छेद।
मोह अज्ञान मिथ्यात्व को, करजो ग्रन्थि भेद।।3।।

पतित उद्धारण नाथजी, अपनो विरुद्ध विचार।
भूल चूक सब माहरी, खमिये बारम्बार।।4।।

माफ करो सब माहरा, आज तलक ना दोष।
दीन दयाल देवो मुझे, श्रद्धा शील संतोष।।5।।

आत्म निन्दा शुद्ध भणी, गुणवन्त वन्दन भाव।
राग द्वेष पतला करी, सबसे खमत खमाव।।6।।

छूटूं पिछला पाप से, नवा न बांधू कोय।
श्री गुरुदेव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय।।7।।

परिग्रह ममता तजि करी, पंच महाव्रत धार।
अन्त समय आलोयणा, करूँ संथारो सार।।8।।

तीन मनोरथ ए कह्या, जो ध्यावे नित्य मन।
शक्ति सार वरते सही, पावे शिवसुख घन।।9।।

अरिहन्त देव निर्ग्रन्थ गुरु, संवर निर्जरा धर्म।
केवलिभाषित शास्त्र, यही जैनमत मर्म।।10।।

आरंभ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित व्रत धार।
जिन आज्ञा परमाण कर, निश्चय खेवो पार।।11।

क्षण निकमो रहणो नहीं, करणो आतम काम।
भणणो गुणणो सीखणो, रमणो ज्ञान आराम।।12।।

-----●-----

परिशिष्ट-1

परमाणु पुद्गल के निश्चय दृष्टि से 200 भंग

क्र. सं.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श	
1	काला	सुरभि	तीखा	शीत स्निग्ध	(1)
2	’’	’’	’’	शीत रुक्ष	(2)
3	’’	’’	’’	उष्ण स्निग्ध	(3)
4	’’	’’	’’	उष्ण रुक्ष	(4)
5–8	काला	सुरभि	कड़वा	1,2,3,4	
9–12	’’	’’	कषैला	1,2,3,4	
13–16	’’	’’	खट्टा	1,2,3,4	
17–20	’’	’’	मीठा	1,2,3,4	
21–40	काला	दुरभि	ती,कड़,कषै,ख,मी	1,2,3,4	
41–80	नीला	सुरभि, दुरभि	ती,कड़,कषै,ख,मी	1,2,3,4	
81–120	लाल	’’	’’	1,2,3,4	
121–160	पीला	’’	’’	1,2,3,4	
161–200	सफेद	’’	’’	1,2,3,4	

दो प्रदेशी स्कन्ध के निश्चय दृष्टि से 6075 भंग

क्र. सं.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श	
1	काला	सुरभि	तीखा	शीत स्निग्ध	1
2	’’	’’	’’	शीत रुक्ष	2
3	’’	’’	’’	उष्ण स्निग्ध	3
4	’’	’’	’’	उष्ण रुक्ष	4
5	’’	’’	’’	शीत स्निग्ध रुक्ष	5
6	’’	’’	’’	उष्ण स्निग्ध रुक्ष	6

क्र. सं.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
7	काला	सुरभि	तीखा[1]	शीत उष्ण स्निग्ध 7
8	''	''	''	शीत उष्ण रुक्ष 8
9	''	''	''	शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष 9
10–18	काला	सुरभि	कड़वा[2]	1,2,3,4,5,6,7,8,9
19–27	''	''	कषैला[3]	''
28–36	''	''	खट्टा[4]	''
37–45	''	''	मीठा[5]	''
46–54	काला	सुरभि	तीखा कड़वा[6]	1,2,3,4,5,6,7,8,9
55–63	''	''	तीखा कषैला[7]	''
64–72	''	''	तीखा खट्टा[8]	''
73–81	''	''	तीखा मीठा[9]	''
82–90	''	''	कड़वा कषैला[10]	''
91–99	''	''	कड़वा खट्टा[11]	''
100–108	''	''	कड़वा मीठा[12]	''
109–117	''	''	कषैला खट्टा[13]	''
118–126	''	''	कषैला मीठा[14]	''
127–135	''	''	खट्टा मीठा[15]	''
136–270	काला	दुरभि	1,2,3,4 15	1,2,3,4,5,6,7,8,9
271–405	काला	सुरभि, दुरभि	1,2,3,4 15	1,2,3,4,5,6,7,8,9
406–810	नीला	सु., दु., सु.-दु.	1,2,3,4 15	1,2,3,4,5,6,7,8,9
811–1215	लाल	''	''	''
1216–1620	पीला	''	''	''
1621–2025	सफेद	''	''	''
2026–2430	काला नीला	''	''	''

क्र. सं.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
2431-2835	काला लाल	सु., दु., सु.-दु.	1,2,3,4.....15	1,2,3,4,5,6,7,8,9
2836-3240	काला पीला	''	''	''
3241-3645	काला सफेद	''	''	''
3646-4050	नीला लाल	''	''	''
4051-4455	नीला पीला	''	''	''
4456-4860	नीला सफेद	''	''	''
4861-5265	लाल पीला	''	''	''
5266-5670	लाल सफेद	''	''	''
5671-6075	पीला सफेद	''	''	''

तीन प्रदेशी स्कन्ध के निश्चय दृष्टि से 16875 भंग

क्र. सं.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
1-135	काला	सुरभि	1,2,3,4................15	1,2,3,4,5,6,7,8,9
136-144	''	''	तीखा कड़वा कषैला [16]	''
145-153	''	''	तीखा कड़वा खट्टा [17]	''
154-162	''	''	तीखा कड़वा मीठा [18]	''
163-171	''	''	तीखा कषैला खट्टा [19]	''
172-180	''	''	तीखा कषैला मीठा [20]	''
181-189	''	''	तीखा खट्टा मीठा [21]	''
190-198	''	''	कड़वा कषैला खट्टा [22]	''
199-207	''	''	कड़वा कषैला मीठा [23]	''
208-216	''	''	कड़वा खट्टा मीठा [24]	''
217-225	''	''	कषैला खट्टा मीठा [25]	''
226-450	काला [1]	दुरभि	1,2,3,4................25	1,2,3,4,5,6,7,8,9
451-675	''	सुरभि, दुरभि	''	''

क्र. सं.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
676-1350	नीला [2]	सु., द., सु.-दु.	1,2,3,4.........25	1,2,3,4,5,6,7,8,9
1351-2025	लाल [3]	''	''	''
2026-2700	पीला [4]	''	''	''
2701-3375	सफेद [5]	''	''	''
3376-4050	काला नीला [6]	''	''	''
4051-4725	काला लाल [7]	''	''	''
4726-5400	काला पीला [8]	''	''	''
5401-6075	काला सफेद [9]	''	''	''
6076-6750	नीला लाल [10]	''	''	''
6751-7425	नीला पीला [11]	''	''	''
7426-8100	नीला सफेद [12]	''	''	''
8101-8775	लाल पीला [13]	''	''	''
8776-9450	लाल सफेद [14]	''	''	''
9451-10125	पीला सफेद [15]	''	''	''
10126-10800	काला नीला लाल [16]	''	''	''
10801-11475	काला नीला पीला [17]	''	''	''
11476-12150	काला नीला सफेद [18]	''	''	''
12151-12825	काला लाल पीला [19]	''	''	''
12826-13500	काला लाल सफेद [20]	''	''	''
13501-14175	काला पीला सफेद [21]	''	''	''
14176-14850	नीला लाल पीला [22]	''	''	''
14851-15525	नीला लाल सफेद [23]	''	''	''
15526-16200	नीला पीला सफेद [24]	'' ''	''	
16201-16875	लाल पीला सफेद [25]	''	''	''

चार प्रदेशी स्कन्ध के निश्चय दृष्टि से 24300 भंग

क्र. सं.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
1-225	काला	सुरभि	1,2,3,4...25	1,2,3,4,5,6,7,8,9
226-234	''	''	ती. कड़वा कषैला खट्टा [26]	''
235-243	''	''	ती. कड़वा कषैला मीठा [27]	''
244-252	''	''	ती. कड़वा खट्टा मीठा [28]	''
253-261	''	''	ती. कषैला खट्टा मीठा [29]	''
262-270	''	''	कड़वा कषैला खट्टा मीठा [30]	''
क्र. सं.	**वर्ण**	**गंध**	**रस**	**स्पर्श**
271-540	काला	दुरभि	1,2,3,4...30	1,2,3,4,5,6,7,8,9
541-810	काला [1]	सुरभि, दुरभि	1,2,3,4...30	''
811-1620	नीला [2]	सु.-दु.,सुरभि, दुरभि	1,2,3,4...30	1,2,3,4,5,6,7,8,9
1621-8100	3,4,......10	''	''	''
8101-16200	11,12,.....20	''	''	''
16201-20250	21,22,.....25	''	''	''
20251-21060	का.नी.ला.पी.	''	''	''
21061-21870	का.नी.ला.स.	''	''	''
21871-22680	का.नी.पी.स.	''	''	''
22681-23490	का.ला.पी.स.	''	''	''
23491-24300	नी.ला.पी.स.	''	''	''

परिशिष्ट-2

सूक्ष्म परिणत पुद्गलों के 25947 भंग

क्रमांक	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
1.	काला	सुरभि	तीखा[1]	शीत स्निग्ध (1)
2.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत रुक्ष (2)
3.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण स्निग्ध (3)
4.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण रुक्ष (4)
5.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत स्निग्ध रुक्ष (5)
6.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण स्निग्ध रुक्ष (6)
7.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत उष्ण स्निग्ध (7)
8.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत उष्ण रुक्ष (8)
9.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष (9)
10.	‘‘	‘‘	कड़वा[2]	शीत स्निग्ध
11.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत रुक्ष
12.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण स्निग्ध
13.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण रुक्ष
14.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत स्निग्ध रुक्ष
15.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण स्निग्ध रुक्ष
16.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत उष्ण स्निग्ध
17.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत उष्ण रुक्ष
18.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
19-27	‘‘	‘‘	कषैला[3]	1,2,3,4,5,6,7,8,9
28-36	‘‘	‘‘	खट्टा[4]	1,2,3, ... 9
37-45	‘‘	‘‘	मीठा[5]	1,2,3, ... 9
46-54	‘‘	सुरभि[1]	तीखा कड़वा[6]	1,2,3, ... 9
55-63	‘‘	‘‘	तीखा कषैला[7]	1,2,3, ... 9
64-72	‘‘	‘‘	तीखा खट्टा[8]	1,2,3, ... 9
73-81	‘‘	‘‘	तीखा मीठा[9]	1,2,3, ... 9
82-90	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला[10]	1,2,3, ... 9
91-99	‘‘	‘‘	कड़वा खट्टा[11]	1,2,3, ... 9
100-108	‘‘	‘‘	कड़वा मीठा[12]	1,2,3, ... 9

क्रमांक	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
109–117	काला	सुरभि[1]	कषैला खट्टा[13]	1,2,3 ... 9
118–126	‘‘	‘‘	कषैला मीठा[14]	’’
127–135	‘‘	‘‘	खट्टा मीठा[15]	’’
136–144	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा कषैला[16]	’’
145–153	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा खट्टा[17]	’’
154–162	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा मीठा[18]	’’
163–171	‘‘	‘‘	तीखा कषैला खट्टा[19]	’’
172–180	‘‘	‘‘	तीखा कषैला मीठा[20]	’’
181–189	‘‘	‘‘	तीखा खट्टा मीठा[21]	’’
190–198	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला खट्टा[22]	’’
199–207	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला मीठा[23]	’’
208–216	‘‘	‘‘	कड़वा खट्टा मीठा[24]	’’
217–225	‘‘	‘‘	कषैला खट्टा मीठा[25]	’’
226–234	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा कषैला खट्टा[26]	’’
235–243	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा कषैला मीठा[27]	’’
244–252	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा खट्टा मीठा[28]	’’
253–261	‘‘	‘‘	तीखा कषैला खट्टा मीठा[29]	’’
262–270	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला खट्टा मीठा[30]	1,2, ... 9
271–279	‘‘	सुरभि[1]	तीखा कड़वा कषैला खट्टा मीठा[31]	’’
280–558	काला	दुरभि[2]	1,2, ... 31	’’
559–837	काला	सु.दु.[3]	‘‘	’’
838–1116	नीला	सुरभि[1]	‘‘	’’
1117–1395	नीला	दुरभि[2]	‘‘	’’
1396–1674	नीला	सु.दु.[3]	‘‘	’’
1675–2511	लाल	1,2,3	‘‘	’’
2512–3348	पीला	‘‘	‘‘	’’
3349–4185	सफेद	‘‘	‘‘	’’

क्रमांक	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
4186-5022	काला नीला	1,2,3	1,2 ...31	1,2,3...9
5023-5859	काला लाल	‘‘	’’	’’
5860-6696	काला पीला	‘‘	’’	’’
6697-7533	काला सफेद	‘‘	’’	’’
7534-8370	नीला लाल	‘‘	’’	’’
8371-9207	नीला पीला	‘‘	’’	’’
9208-10044	नीला सफेद	‘‘	’’	’’
10045-10881	लाल पीला	‘‘	’’	’’
10882-11718	लाल सफेद	‘‘	’’	’’
11719-12555	पीला सफेद	‘‘	’’	’’
12556-13392	काला नीला लाल	‘‘	’’	’’
13393-14229	काला नीला पीला	‘‘	’’	’’
14230-15066	काला नीला सफेद	‘‘	’’	’’
15067-15903	काला लाल पीला	‘‘	’’	’’
15904-16740	काला लाल सफेद	‘‘	’’	’’
16741-17577	काला पीला सफेद	‘‘	’’	’’
17578-18414	नीला लाल पीला	‘‘	’’	’’
18415-19251	नीला लाल सफेद	‘‘	’’	’’
19252-20088	नीला पीला सफेद	‘‘	’’	’’
20089-20925	लाल पीला सफेद	‘‘	’’	’’
20926-21762	काला नीला लाल पीला	सु.[1],दु.[2], सु.-दु.[3]	’’	’’ ’’
21763-22599	काला नीला लाल सफेद	’’	’’	’’
22600-23436	काला नीला पीला सफेद	’’	’’	’’
23437-24273	काला लाल पीला सफेद	’’	’’	’’
24274-25110	नीला लाल पीला सफेद	’’	’’	’’
25111-25947	काला नीला लाल पीला सफेद	’’	’’	’’

बादर परिणत पुद्‌गलों में जघन्य 1 वर्ण उत्कृष्ट 5 वर्ण होते हैं।
बादर परिणत पुद्‌गलों में जघन्य 1 गंध उत्कृष्ट 2 गंध होती हैं।
बादर परिणत पुद्‌गलों में जघन्य 1 रस उत्कृष्ट 5 रस होते हैं।
बादर परिणत पुद्‌गलों में जघन्य 4 स्पर्श उत्कृष्ट 8 स्पर्श होते हैं।
चार स्पर्श होने पर कर्कश मृदु में से एक, गुरु लघु में से एक, शीत उष्ण में से एक तथा स्निग्ध रुक्ष में से एक=ये 4 स्पर्श होते हैं। पाँच आदि स्पर्श होने पर इन चारों में क्रमशः एक-एक स्पर्श बढ़ते हुए पाँच यावत् आठ स्पर्श होते हैं।
-वर्ण के प्रकार 31 (पूर्ववत् सूक्ष्म परिणत पुद्‌गल के समान)
-गंध के प्रकार 3 (पूर्ववत्)
-रस के प्रकार 31 (पूर्ववत्)
-स्पर्श के प्रकार 81 - चतुसंयोगी 16+पंच संयोगी 32+छः संयोगी 24+सात संयोगी 8+आठ संयोगी 1=81
इन्हें परस्पर गुणा करने से 233523 भंग बनते हैं।
31 (वर्ण) x 3 (गंध) x 31 (रस) x 81 (स्पर्श) = **233523** भंग हुए।

बादर परिणत पुद्गलों के 2,33,523 भंग

क्रमांक	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
				चतुसंयोगी
1.	काला	सुरभि	तीखा	कर्कश गुरु शीत स्निग्ध
2.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु शीत रुक्ष
3.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु उष्ण स्निग्ध
4.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु उष्ण रुक्ष
5.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश लघु शीत स्निग्ध
6.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश लघु शीत रुक्ष
7.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश लघु उष्ण स्निग्ध
8.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश लघु उष्ण रुक्ष
9.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु गुरु शीत स्निग्ध
10.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु गुरु शीत रुक्ष
11.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु गुरु उष्ण स्निग्ध
12.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु गुरु उष्ण रुक्ष
13.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु लघु शीत स्निग्ध
14.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु लघु शीत रुक्ष
15.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु लघु उष्ण स्निग्ध
16.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु लघु उष्ण रुक्ष
				पंच संयोगी
17.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु शीत स्निग्ध रुक्ष
18.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु उष्ण स्निग्ध रुक्ष
19.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश लघु शीत स्निग्ध रुक्ष
20.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश लघु उष्ण स्निग्ध रुक्ष
21.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु गुरु शीत स्निग्ध रुक्ष
22.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु गुरु उष्ण स्निग्ध रुक्ष
23.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु लघु शीत स्निग्ध रुक्ष
24.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु लघु उष्ण स्निग्ध रुक्ष
25.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु स्निग्ध शीत उष्ण
26.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु रुक्ष शीत उष्ण
27.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश लघु स्निग्ध शीत उष्ण

क्र.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
28.	काला	सुरभि	तीखा	कर्कश लघु रुक्ष शीत उष्ण
29.	"	"	"	मृदु गुरु स्निग्ध शीत उष्ण
30.	"	"	"	मृदु गुरु रुक्ष शीत उष्ण
31.	"	"	"	मृदु लघु स्निग्ध शीत उष्ण
32.	"	"	"	मृदु लघु रुक्ष शीत उष्ण
33.	"	"	"	कर्कश शीत स्निग्ध गुरु लघु
34.	"	"	"	कर्कश शीत रुक्ष गुरु लघु
35.	"	"	"	कर्कश उष्ण स्निग्ध गुरु लघु
36.	"	"	"	कर्कश उष्ण रुक्ष गुरु लघु
37.	"	"	"	मृदु शीत स्निग्ध गुरु लघु
38.	"	"	"	मृदु शीत रुक्ष गुरु लघु
39.	"	"	"	मृदु उष्ण स्निग्ध गुरु लघु
40.	"	"	"	मृदु उष्ण रुक्ष गुरु लघु
41.	"	"	"	गुरु शीत स्निग्ध कर्कश मृदु
42.	"	"	"	गुरु शीत रुक्ष कर्कश मृदु
43.	"	"	"	गुरु उष्ण स्निग्ध कर्कश मृदु
44.	"	"	"	गुरु उष्ण रुक्ष कर्कश मृदु
45.	"	"	"	लघु शीत स्निग्ध कर्कश मृदु
46.	"	"	"	लघु शीत रुक्ष कर्कश मृदु
47.	"	"	"	लघु उष्ण स्निग्ध कर्कश मृदु
48.	"	"	"	लघु उष्ण रुक्ष कर्कश मृदु
				छः संयोगी
49.	"	"	"	कर्कश गुरु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
50.	"	"	"	कर्कश लघु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
51.	"	"	"	मृदु गुरु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
52.	"	"	"	मृदु लघु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
53.	"	"	"	कर्कश शीत गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष
54.	"	"	"	कर्कश उष्ण गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष
55.	"	"	"	मृदु शीत गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष
56.	"	"	"	मृदु उष्ण गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष

क्रमांक	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
57.	काला	सुरभि	तीखा	कर्कश स्निग्ध गुरु लघु शीत उष्ण
58	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश रुक्ष गुरु लघु शीत उष्ण
59.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु स्निग्ध गुरु लघु शीत उष्ण
60.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु रुक्ष गुरु लघु शीत उष्ण
61.	‘‘	‘‘	‘‘	गुरु शीत कर्कश मृदु स्निग्ध रुक्ष
62.	‘‘	‘‘	‘‘	गुरु उष्ण कर्कश मृदु स्निग्ध रुक्ष
63.	‘‘	‘‘	‘‘	लघु शीत कर्कश मृदु स्निग्ध रुक्ष
64.	‘‘	‘‘	‘‘	लघु उष्ण कर्कश मृदु स्निग्ध रुक्ष
65.	‘‘	‘‘	‘‘	गुरु स्निग्ध कर्कश मृदु शीत उष्ण
66.	‘‘	‘‘	‘‘	गुरु रुक्ष कर्कश मृदु शीत उष्ण
67.	‘‘	‘‘	‘‘	लघु स्निग्ध कर्कश मृदु शीत उष्ण
68.	‘‘	‘‘	‘‘	लघु रुक्ष कर्कश मृदु शीत उष्ण
69.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत स्निग्ध कर्कश मृदु गुरु लघु
70.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत रुक्ष कर्कश मृदु गुरु लघु
71.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण स्निग्ध कर्कश मृदु गुरु लघु
72.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण रुक्ष कर्कश मृदु गुरु लघु
				सात संयोगी
73.	‘‘	‘‘	‘‘	कर्कश गुरु लघु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
74.	‘‘	‘‘	‘‘	मृदु गुरु लघु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
75.	‘‘	‘‘	‘‘	गुरु कर्कश मृदु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
76.	‘‘	‘‘	‘‘	लघु कर्कश मृदु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
77.	‘‘	‘‘	‘‘	शीत कर्कश मृदु गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष
78.	‘‘	‘‘	‘‘	उष्ण कर्कश मृदु गुरु लघु स्निग्ध रुक्ष
79.	‘‘	‘‘	‘‘	स्निग्ध कर्कश मृदु गुरु लघु शीत उष्ण
80.	‘‘	‘‘	‘‘	रुक्ष कर्कश मृदु गुरु लघु शीत उष्ण
				आठ संयोगी
81.	काला	सुरभि	तीखा[1]	कर्कश मृदु गुरु लघु शीत उष्ण स्निग्ध रुक्ष
82–162	‘‘	‘‘	कड़वा[2]	1,2,3,4,5......81
163–243	‘‘	‘‘	कषैला[3]	‘‘
244–324	‘‘	‘‘	खट्टा[4]	‘‘

क्र.	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
325-405	काला	सुरभि	मीठा[5]	1,2,3,4,5...81
406-486	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा[6]	‘‘
487-567	‘‘	‘‘	तीखा कषैला[7]	‘‘
568-648	‘‘	‘‘	तीखा खट्टा[8]	‘‘
649-729	‘‘	‘‘	तीखा मीठा[9]	‘‘
730-810	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला[10]	‘‘
811-891	‘‘	‘‘	कड़वा खट्टा[11]	‘‘
892-972	‘‘	‘‘	कड़वा मीठा[12]	‘‘
973-1053	‘‘	‘‘	कषैला खट्टा[13]	‘‘
1054-1134	‘‘	‘‘	कषैला मीठा[14]	‘‘
1135-1215	‘‘	‘‘	खट्टा मीठा[15]	‘‘
1216-1296	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा कषैला[16]	‘‘
1297-1377	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा खट्टा[17]	‘‘
1378-1458	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा मीठा[18]	‘‘
1459-1539	‘‘	‘‘	तीखा कषैला खट्टा[19]	‘‘
1540-1620	‘‘	‘‘	तीखा कषैला मीठा[20]	‘‘
1621-1701	‘‘	‘‘	तीखा खट्टा मीठा[21]	‘‘
1702-1782	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला खट्टा[22]	‘‘
1783-1863	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला मीठा[23]	‘‘

क्रमांक	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
1864-1944	काला	सुरभि	कड़वा खट्टा मीठा[24]	1,2,3...81
1945-2025	‘‘	‘‘	कषैला खट्टा मीठा[25]	‘‘
2026-2106	काला	सुरभि	तीखा कड़वा कषैला खट्टा[26]	‘‘
2107-2187	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा कषैला मीठा[27]	‘‘
2188-2268	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा खट्टा मीठा[28]	‘‘
2269-2349	‘‘	‘‘	तीखा कषैला खट्टा मीठा[29]	‘‘
2350-2430	‘‘	‘‘	कड़वा कषैला खट्टा मीठा[30]	‘‘
2431-2511	‘‘	‘‘	तीखा कड़वा कषैला खट्टा मीठा[31]	‘‘ ‘‘
2512-5022	काला	दुरभि	1,2,3...31	‘‘
5023-7533	काला	सुरभि-दुरभि	‘‘	‘‘
7534-15066	नीला	सु.,दु.,सु.-दु.	1,2,3...31	1,2,3...81
15067-22599	लाल	‘‘	‘‘	‘‘
22600-30132	पीला	‘‘	‘‘	‘‘
30133-37665	सफेद	‘‘	‘‘	‘‘
37666-45198	काला नीला	‘‘	‘‘	‘‘
45199-52731	काला लाल	‘‘	‘‘	‘‘
52732-60264	काला पीला	‘‘	‘‘	‘‘
60265-67797	काला सफेद	‘‘	‘‘	‘‘
67798-75330	नीला लाल	‘‘	‘‘	‘‘

क्रमांक	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
75331-82863	नीला पीला	सु.,दु.,सु.-दु.	1,2,....31	1,2,..81
82864-90396	नीला सफेद	''	''	''
90397-97929	लाल पीला	''	''	''
97930-105462	लाल सफेद	''	''	''
105463-112995	पीला सफेद	''	''	''
112996-120528	काला नीला लाल	''	''	''
120529-128061	काला नीला पीला	''	''	''
128062-135594	काला नीला सफेद	''	''	''
135595-143127	काला लाल पीला	''	''	''
143128-150660	काला लाल सफेद	''	''	''
150661-158193	काला पीला सफेद	''	''	''
158194-165726	नीला लाल पीला	''	''	''
165727-173259	नीला लाल सफेद	''	''	''
173260-180792	नीला पीला सफेद	''	''	''
180793-188325	लाल पीला सफेद	''	''	''
188326-195858	काला नीला लाल पीला	''	''	''
195859-203391	काला नीला लाल सफेद	''	''	''
203392-210924	काला नीला पीला सफेद	''	''	''
210925-218457	काला लाल पीला सफेद	''	''	''
218458-225990	नीला लाल पीला सफेद	''	''	''
225991-233523	काला नीला लाल पीला सफेद	''	''	''

णमो सिद्धाणं

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा 2011

(प्रश्न-उत्तर पत्र भाग-3)

पूर्णांक : 100

सूत्र विभाग-35

प्रश्न 1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।** 30

1) अकप्पो... दुव्वि चिंतिओ।
2) जं वाइद्धं .... अच्चक्खरं।
3) परदर्शन की .... की हो।
   धर्म के फल में ....किया हो।
4) .... की भूमि देखी न हो, या अच्छी तरह से न देखी हो।
5) पाँचवां स्थूल .... व्रत है
   इसके अतिचारों की संख्या .... है।
6) अपच्छिम मारणंतिय .... आराहणाए।
7) बारह व्रत के कुल .... अतिचार हैं। कर्मादान के .... अतिचार हैं।
8) 18 पापस्थानों में पन्द्रहवां पाप .... है।
9) तित्तीसन्नयराए जं .... मणदुक्कडाए, वयदुक्कडाए।
10) वावण्ण .... य सम्मत सद्दहणा।
11) बंधे वहे .... भत्तपाण विच्छेए।
12) कन्नालीए, गोवालीए, ... कुडसक्खिज्जे।
13) 15 कर्मादान श्रावक के जानने योग्य है किन्तु .... करने योग्य नहीं है।
14) अधिकरण यानि .... का संग्रह किया हो।
15) भोयणाओ य कम्मओ य भोयणाओ .... अइयारा।

प्रश्न 2. **सही जोड़ी बनाइये। बनाकर रिक्त स्थान पर लिखें।** 5

1) दूजा स्थूल	अतिथि संविभाग	....
2) चौथा स्थूल	देशावकाशिक	....
3) आठवां स्थूल	मृषावाद	....
4) दसवां स्थूल	अनर्थदण्ड	....
5) बारहवां स्थूल	मैथुन	....

तत्त्व विभाग-25

प्रश्न 1. एक पंक्ति में निम्न प्रश्नों के उत्तर दें। 20

1) गति किसे कहते हैं?

उत्तर ....

2) शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर ....

3) उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर ....

4) पाँच इन्द्रियों के नाम लिखो।

उत्तर ....

5) पाँच ज्ञान के नाम लिखो।

उत्तर ....

6) आयुकर्म को परिभाषित कीजिये।

उत्तर ....

7) तत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर ....

8) बंध के चार भेदों के नाम लिखो।

उत्तर ....

9) छः लेश्याओं के नाम लिखो।

उत्तर ....

10) चार ध्यान के नाम लिखो।

उत्तर ....

प्रश्न 2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए। 5

1) नौवें चक्रवर्ती का नाम .... है।
2) पांचवें बलदेवजी का नाम .... है।
3) चौथे प्रतिवासुदेवजी का नाम .... है।
4) वायुकाय का संठाण .... के समान है।
5) त्रसकाय में सभी .... जीव आते हैं।

कथा विभाग-10

प्रश्न 1. सही (✓) व गलत (✗) बताइये 10

1) 'कमठ' नाम के तपस्वी ने पंचाग्नि तप किया। ( )
2) 'नाग' का जीव मरकर 'धरणेन्द्र' बना। ( )
3) 'धरणेन्द्र' ने भगवान पार्श्वनाथ को उपसर्ग दिया। ( )
4) सुलसा श्राविका सम्यक्त्व पर दृढ़ थी। ( )
5) सुलसा श्राविका की परीक्षा भगवान महावीर ने ली। ( )
6) अम्बड़, सुलसा श्राविका के पास पिशाच का रूप बनाकर आया है। ( )
7) राजकुमार स्कंधक 64 कलाओं में निपुण थे। ( )
8) 'राजा' ने चाण्डालों को, स्कंधक मुनि की खाल उतारने का आदेश दिया। ( )
9) 'मुनिश्री' की खाल उतारने की खबर सुन रानी 'सुनंदा' प्रसन्न हुई। ( )
10) 'काचरे' का जीव मरकर राजा 'कनककेतु' बना। ( )

काव्य विभाग-15

प्रश्न 1. निम्न दोहों को पूर्ण कीजिए। 15

1) अल्प-श्रुत श्रुतवतां परिहास धाम, ...।
यत कोकिल: किल मधो मधुरं विरोति, ...।
2) चित्रं-किमत्र-यदि ते त्रिदशांग नाभिर, ...।
कल्पांत काल मरूता चलिता-चलेन, ...।

3) मेरा मेरा ………………………………………………………………।
………………………………………………………………होगा डेरा।।

4) ………………………………………………………………………।
अन्याय से निश-दिन दूर रहे,
जीवन हो शुद्ध, सरल अपना,
………………………………………………………………………।।

5) मोक्ष की ……………………………………………………………
…………………………………………………………… भाव चाहता हूँ।

सामान्य ज्ञान विभाग-15

प्रश्न 1. सही विकल्प चुनकर दिये गये (……) स्थान पर लिखो। 10

1) जयंतिबाई के प्रश्न इस सूत्र से लिये गये हैं। (…………)
(1) उत्तरराध्ययन सूत्र (2) नंदी सूत्र
(3) भगवती सूत्र (4) दशवैकालिक सूत्र

2) क्या सभी भवसिद्धिक जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे? (…………)
(1) हाँ (2) नहीं
(3) कुछ जीव (4) मालूम नहीं

3) जीव के भारी होने के कारण हैं। (…………)
(1) 20 आश्रव (2) 4 बंध
(3) 18 पाप (4) कायाक्लेश

4) प्रतिदिन सामायिक और देशावकासिक व्रत सम्यक पालें यह श्रावक का विश्राम है। (…………)
(1) पहला (2) दूसरा
(3) तीसरा (4) चौथा

5) राग-द्वेष को पूर्ण जीतने वाले हैं। (…………)
(1) श्रावक (2) जिन
(3) देव (4) साधु

6) साधना करने वाले हैं। (…………)
(1) यति (2) ऋषि

(3) श्रावक (4) साधु

7) अनशन, ऊनोदरी, रस परित्याग, कौनसा तप है? (..............)

(1) आभ्यान्तर (2) बाह्य

(3) दोनों (4) अतप

8) सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन, सम्यक चारित्र को कहते हैं। (..............)

(1) अहिंसा त्रय (2) संयम त्रय

(3) रत्न त्रय (4) महात्रय

9) जिनशासन के नायक व संचालक होते हैं। (..............)

(1) साधु (2) स्थविर

(3) आचार्य (4) उपाध्याय

10) 'माया' नाश करती है। (..............)

(1) प्रीति का (2) विनय का

(3) मित्रता का (4) क्रोध का

प्रश्न 2. सुभाषित के निम्न दोहे पूर्ण कीजिए। 5

1) करूणानिधि, ...।

.... करजो ग्रन्थी भेद।

2) ....आज तलक ना दोष

दीन दयाल देवो मुझे, ...।

3) आत्मनिन्दा शुद्ध भणी, ...।

.... सबसे खमत खमाओ।